समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक समाचारपत्र • वर्ष 2 अंक 10-11
नवम्बर-दिसम्बर 2000 • तीन रुपये • बारह पृष्ठ

सुप्रीम कोर्ट के फैसले से दिल्ली से लघु उद्योगों को उजाड़ना शुरू

पर्यावरण के नाम पर 25 लाख से भी अधिक मजदूरों की रोजी छीन रही है सरकार

पर्यावरण की चिन्ता नहीं इजारेदारी की सोची-समझी साज़िश

सम्पादकीय

दिल्ली का हवा-पानी दुरुस्त करने के नाम पर मजदूरों पर कहर बरपा करने की तैयारी न्यायपालिका की मदद से एक बार फिर पूरी हो चुकी है।

इस बार जिस हमले की तैयारी है, उसकी विकरालता के आगे पिछला "पर्यावरण-सुधार" तो कुछ भी नहीं था। वह तो महज एक बानगी था। सुप्रीम कोर्ट के विगत आठ सितम्बर के आदेश के मुताबिक दिल्ली के रिहायशी और नॉन-कन्फर्मिंग इलाके में चल रहे कुल 1 लाख 37 हजार लघु औद्योगिक इकाइयों के सिर पर बन्दी की तलवार लटक रही है, जिसकी कीमत कम से कम 15 लाख मजदूर बेकार होकर चुकायेंगे।

सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले से जुड़ा हुआ पहला सवाल तो यही है कि इस फैसले के पीछे क्या वाकई मामला पर्यावरण-प्रदूषण का है? पर इस सवाल पर विचार से पहले कुछ और तथ्यों पर गौर करना जरूरी है।

पारिस्थितिक-सन्तुलन बहाल करना और प्रदूषण-निवारण निहायत जरूरी है, पर यह बहुसंख्यक उत्पादक मेहनतकश आबादी को भूखों मारकर या उन्हें उजाड़कर ही हमेशा क्यों किया जाता है? प्रदूषण के लिए मुख्यतः जिम्मेदार धनिक आबादी के विरुद्ध कोई कदम कभी क्यों नहीं उठाया जाता? केन्द्र सरकार, राज्य सरकार, पर्यावरण मंत्रालयों, प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों और अनेकों गैर-सरकारी संस्थानों की नाक के नीचे फैक्टरियां लगती और चलती हैं, और तमाम ताकतवर लोग अपनी सुख-सुविधा और मुनाफे के लिए जमीन, पानी, बिजली का बेहिसाब-बेरोकटोक इस्तेमाल करते हैं। दिल्ली में जल प्रदूषण का करीब 65 प्रतिशत सीवर से होता है और दिल्ली की 70% आबादी यानी गरीबों को सीवर की सुविधा ही उपलब्ध नहीं है। पर पर्यावरण सुधार-अभियान का खामियाजा वही भुगतेंगे। सरकारी आंकड़ों के मुताबिक उद्योगों से होने वाले कुल जल प्रदूषण का आधा सिर्फ 45 बड़ी और मझोली औद्योगिक इकाइयों से होता है, लेकिन बंदी की तलवार गिर रही है लघु उद्योगों पर। लाखों मोटरवाहन रोजाना सैकड़ों टन विषैला धुंआ छोड़ते हैं। खुद केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के आंकड़े बताते हैं कि दिल्ली के वायु प्रदूषण का 64 प्रतिशत इन मोटर वाहनों के कारण होता है।

प्रदूषण हटाने के नाम पर यदि कारखाना बन्द करना है तो उनमें कार्यरत श्रमिक आबादी को वैकल्पिक रोजगार देना भी सरकार की ही जिम्मेदारी है। और सबसे बुनियादी बात तो यह है कि पर्यावरण के विनाश के लिए मूलतः उस पूंजीवादी उत्पादन तंत्र की अराजकता जिम्मेदार होती है, जो मुनाफे के लिए श्रम-शक्ति और प्रकृति को अंधाधुंध निचोड़ता और तबाह करता है। सच यह है कि पर्यावरण के प्रश्न पर मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी शहरी समाज आज उस प्रतिक्रियावादी नजरिये से बुरीतरह प्रभावित है, जिसका प्रचार पूंजीवादी मीडिया के भोंपू और टट्टू खूब करते रहते हैं।

यह एक अलग से चर्चा का विषय है, पर यहां दिल्ली के लघु उद्योगों की बन्दी के पीछे भी मूल प्रश्न पर्यावरण का है ही नहीं।

सच तो यह है कि पर्यावरण के प्रश्न को अन्तरराष्ट्रीय व्यापार में शर्त के रूप में शामिल करने के अमेरिकी दबाव के सियेटल में विरोध करने का दावा करने वाली केन्द्र की भाजपा सरकार और दिल्ली राज्य की कांग्रेसी सरकार देशी-विदेशी एकाधिकारी घरानों के दबाव में पर्यावरण-सुधार की आड़ लेकर, न्यायपालिका के फैसले की मदद से छोटे उद्योगों को व्यवस्थित ढंग से तबाह करके एकाधिकारी पूंजी को निवेश के लिए नये क्षेत्र मुहैया कराने का कुचक्र रच रही हैं। यह बड़ी पूंजी द्वारा छोटी पूंजी को तबाह करने के साम्राज्यवादी नियम का ही एक और उदाहरण है। वैसे छोटे कारखानेदार कोई सहानुभूति के पात्र इन अर्थों में नहीं हैं कि मजदूरों को 40-50 रुपये की दिहाड़ी पर दस-दस घण्टे दासों की तरह खटाने में वे बड़े मालिकों से कहीं आगे हैं। अब ये छोटे परभक्षी बड़े परभक्षियों द्वारा तरह-तरह से निगले जा रहे हैं और बड़े परभक्षी भी अब अतिलाभ निचोड़ने के लिए आतुर होकर श्रमिकों को ठेका और दिहाड़ी पर रखकर छोटे उद्योगपतियों की ही तरह, या उनसे भी बदतर व्यवहार कर रहे हैं।

इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह पहलू है कि 25 लाख से भी कुछ अधिक मजदूरों के धीरे-धीरे बेरोजगार हो जाने से नये-नये उद्योग लगाने वाले देशी-विदेशी घरानों को श्रमशक्ति अत्यन्त सस्ती दरों पर उपलब्ध होगी और मजदूरों को वे मनमानी शर्तों पर निचोड़ सकेंगे। अन्यथा ऐसा नहीं है कि एक लाख से भी अधिक कारखाने बन्द करने के बजाय इस देश की सरकार और न्यायपालिका छोटे कारखाना मालिकों से 'एफ्लुएंट ट्रीटमेण्ट प्लाण्ट' ही नहीं लगवा सकती थी! दरअसल सरकार की मंशा ही यही है कि ये लघु उद्योग किसी भी तरह से बंद हों और इसीलिए उसे खुद भी जो 15

(पेज 11 पर जारी)

ए.एस.पी., गजरौला का मजदूर आन्दोलन निर्णायक मुकाम पर

बिगुल संवाददाता

गजरौला (ज्योतिबाफुले नगर)। आनन्द सीलिंग प्रोडक्ट्स प्रा. लि. (ए.एस.पी.) के मजदूरों का लगभग चार माह पुराना आन्दोलन निर्णायक मुकाम पर पहुंच गया है। संयुक्त मजदूर संघर्ष समिति के बैनर तले आन्दोलन को योजनाबद्ध ढंग से धीरे-धीरे ऊपर उठाते हुए मजदूरों ने पिछले 28 नवम्बर से कारखाना परिसर के भीतर हर तरह की आवाजाही पर रोक लगा दी है। उन्होंने फैसला किया है कि उनकी मांगें पूरी होने तक यह रोक जारी रहेगी।

मजदूरों की अहम मांगें आन्दोलन के दौरान निकाले गये 28 मजदूरों को काम पर वापस लेने, त्रिवर्षीय वेतन समझौता लागू करने, अस्थायी-ठेका मजदूरों को सरकार द्वारा घोषित न्यूनतम मजदूरी देने एवं उनके काम के तय घण्टों से ज्यादा काम न लेने आदि हैं। प्रबन्ध तंत्र ने अब तक हर मुमकिन हथकण्डे अपनाकर आन्दोलन को तोड़ने की कोशिश की है। आन्दोलन शुरू होने के पहले के डेढ़ महीने का वेतन रोक लेने, फिल्मी अन्दाज में हथियारबन्द गुण्डों द्वारा मजदूरों को आतंकित करने, निलम्बन-निष्कासन, स्थायी, अस्थायी और ठेका मजदूरों के बीच भेद पैदा करने आदि का कोई तरीका उन्होंने नहीं छोड़ा। लेकिन मजदूरों की फौलादी एकजुटता के आगे उनकी एक न चली। उल्टे, मजदूर और अधिक मजबूती के साथ एकजुट होते गये।

आन्दोलन के समर्थन में अन्य कारखानों

(पेज 3 पर जारी)

भीतर के पन्नों पर

गजरौला के मजदूर संघर्ष की राह पर 3
भूमण्डलीकरण के खिलाफ दुनिया में तीखे होते मजदूर संघर्ष 4
मजदूर वर्ग का अंतिम लक्ष्य--राजनीतिक सत्ता 4
पंजाब में प्रवासी मजदूरों पर बढ़ रहे हमले 5
बीमा उद्योग पर विदेशी सलाहकार कम्पनी की रिपोर्ट 8
टेल्को की लखनऊ इकाई के 250 कर्मचारी बर्खास्त 8
फ्रेडरिक एंगेल्स : कम्युनिस्ट समाज के बारे में 9
भारत में क्रान्तिकारी आंदोलन की समस्याएं : एक बहस 9
स्तालिन क्या थे—महामानव या भयावह! 11

और कितने कड़े कदम बाकी हैं प्रधानमंत्री महोदय!

सम्पादकीय डेस्क से

लखनऊ। प्रधानमंत्री महोदय ने एक बार देश की जनता को चेताया है कि "देश का आर्थिक विकास तेज करने के लिए केन्द्र और राज्य सरकारों को कड़े कदम उठाने होंगे।" पिछले एक दिसम्बर को राजधानी दिल्ली में व्यापार एवं उद्योग परिषद की तीसरी बैठक को सम्बोधित करते हुए उन्होंने यह चेतावनी दी।

इस बैठक में प्रधानमंत्री के अलावा वित्त मंत्री यशवन्त सिन्हा, रिजर्व बैंक के गवर्नर बिमल जालान और मंत्रिमंडल सचिव टी.आर.प्रसाद के अलावा जाने-माने उद्योगपति रतन टाटा, अनिल अंबानी, संजीव गोयनका, नुस्ली वाडिया, ए.सी. मुथैया, फेडरेशन आफ इण्डियन चैम्बर्स आफ कामर्स एण्ड इण्डस्ट्री (फिक्की) अध्यक्ष जी.पी. गोयनका और भारतीय उद्योग परिसंघ (सी.आई.आई.) के अध्यक्ष अरुण भरत राम मौजूद थे।

देश की मेहनतकश जनता के सबसे बड़े लुटेरों के इस जमावड़े में बैठकर उनका वफादार राजनीतिक नुमाइन्दा जब देश के विकास के लिए और कड़े कदम उठाने की चेतावनी दे रहा हो तो हमारे कान खड़े हो जाने चाहिए। पिछले दस वर्षों में देश की मेहनतकश जनता पहले ही देश के विकास के नाम पर अब तक उठाये जा चुके तमाम कड़े कदमों का अंजाम भुगत रही है। इन कड़े कदमों का ही नतीजा है कि आज देश देशी-विदेशी पूंजीपतियों की लूट का खुला चरागाह बन चुका है। शहर और देहात की करोड़ों मजदूर आबादी का रोज चूल्हा जलना मुश्किल हो गया है और बाकी करोड़ों गरीब आबादी अगर किसी तरह पेट की आग बुझा ले रही है तो इंसान की तरह जीने के लिए दूसरी जरूरी चीजें उसकी पहुंच के बाहर हो गयी हैं। अभाव और बेबसी उनकी हर पल की कहानी बन चुकी है। देशी-विदेशी पूंजीपतियों की मुनाफे की हवस औसत किसानों और शहरी गरीब निम्न मध्य वर्ग की आबादी को सामूहिक आत्महत्याएं कर लेने पर मजबूर कर रही है। अब जब नये कड़े कदम उठाये जायेंगे तो आलम क्या होगा, इसे समझना कठिन नहीं है।

अब बचे-खुचे सरकारी उद्योग भी निजी पूंजीपति हड़प लेंगे। छंटनी-बेकारी का नया दौर शुरू होगा। निजी कारखानों में भी तालाबन्दी की बाढ़ आ जायेगी। नया श्रम कानून लागू कर मजदूरों के बचे-खुचे अधिकारों को छीनकर उन्हें पूंजी के नये बेजुबान गुलामों में तब्दील करना और तेज हो जायेगा। उन्हें हाड़तोड़ मेहनत के बाद सिर्फ उतना ही मिलेगा, जितने में उनकी सांस चलते रहे और पूंजीपतियों का मुनाफा बढ़ता रहे। इससे अधिक मांगने पर धक्के मारकर सड़कों पर फेंक दिया जायेगा। पूंजीपतियों के लिए सड़क पर लाइन में खड़े नये गुलामों की कमी नहीं होगी जो अपने भाइयों की जगह भर्ती हो जायेंगे, गुलामों की नयी जमात के रूप में बेजुबान खटने के लिए, मुनाफा बढ़ाने के लिए।

अब कड़े कदमों की इस नयी धमक

(पेज 11 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग चिंगारी से लगेगी आग

आपस की बात

'बिगुल' का अक्टूबर 2000 अंक मिला। पहले के भी अंक प्रायः मिलते रहे हैं। आज के कठिन समय में, जब साम्राज्यवादी ताकतों की फांस दुनिया की गर्दन को दबोचने के लिए पूरी तत्परता से आगे बढ़ रही है, आपलोग उसे काट डालने वाली क्रान्तिकारी चेतना के प्रचार-प्रसार का ऐतिहासिक काम कर रहे हैं। 'बिगुल' आज की जरूरत है।

– शम्भु बादल, संपादक, 'प्रसंग', हजारीबाग, झारखण्ड

एक कविता

पहाड़ों को काट कर राह बना दे तू
मरुस्थल को खोद कर गुलशन बना दे तू
वक्त है आज मुट्ठी को बांध वज्र बना दे तू
आज वक्त है चलते वक्त को रोक दे तू।
तोड़ दे सारे बंधन जब तक सांस है
लड़ूंगा हक की लड़ाई जब तक आखिरी सांस है।
रखैल बन चुका है आज प्रशासन, शासन
चन्द लोगों की किस्मत है।
न्याय बिक चुका है भरे चौराहे
जैसे अबला की अस्मत है।
न्याय की सुनवाई नहीं
इस न्याय के मंदिर में
होश की बात जैसे किसी मदिरालय में।
तप्त धूप में पर फैलाकर भी दी है तुमको छांह हमने
रात दिन तेरे लिए खून पसीना बहाया है हमने
दुनिया के हर ऐशोआराम में तुझे बैठाया है हमने
बदले में एक वक्त की रोटी भी नहीं खाई है हमने।
हक लेना है तो एक हो जा दुनिया के मजदूर तू
खून पसीना तेरा बरबाद नहीं हो पायेगा
देख लेना एक दिन दुनिया में फिर से,
मजदूर तेरा शासन आयेगा।

– लावण्य पन्त, मजदूर, ए.एस.पी.लि., गजरौला

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और जिम्मेदारियां

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मजदूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मजदूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मजदूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूंजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मजदूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों का नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूंजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

एक और पुलिसिया तांडव

ऐ जुल्म के मारो लब खोलो चुप रहने वालो चुप कबतक?

बिगुल संवाददाता

रुद्रपुर (ऊधमसिंहनगर), 28 अक्टूबर। पुलिसिया दरिन्दगी और जुल्मोसितम ढाने की कहानी भाजपा शासन की आम बात बन चुकी है। आम, गरीब, निहत्थे लोगों की बर्बर पिटाई प्रदेश की बौराई पुलिस का रोजमर्रा का काम बन चुका है। पिछले दिनों ऐसी ही बर्बरता का शिकार बनी रुद्रपुर के रवीन्द्रनगर कालोनी की गरीब (मुख्यतः बंगाली) आबादी। आज भी पुलिस की निर्मम बर्बरता और जुल्म के प्रत्यक्ष गवाह है यहां के टूटे-फूटे मकान, बिखरे हुए सामान और लोगों की कराहें व सिसकियां।

अभी भी इस दरिन्दगी की दहशत से लोग उबर भी न पाये थे और चालीस बेगुनाह स्त्री-पुरुष पुलिस के यंत्रणागृह (जेल) से मुक्त भी नहीं हो पाये थे कि स्थानीय भदईपुरा में रह रही गरीब आबादी की झुग्गी-झोपड़ियों को जिला प्रशासन ने बुलडोजर से रौंद कर उन्हें बच्चों समेत मरने-खपने के लिए छोड़ दिया। इनके लिए दीपावली की रोशनी स्याह अंधेरे में बदल गयी।

पहली घटना है विजयदशमी के बाद अर्धरात्रि की। श्याम टाकीज के सामने (रवीन्द्रनगर कालोनी) सड़क के किनारे गंगाराम का खोखा विगत तीस वर्षों से चल रहा था। उसके खोखे के ठीक पीछे सुभाष मिश्रा ने पक्का मकान बनवा लिया है, जिसकी निगाह गंगाराम के खोखे पर रही है। न्यायालय से भी हारने के बाद सुभाष ने बलात उस जगह को हथियाने के लिए अर्धरात्रि में गंगाराम के खोखे पर हमला बोल दिया और उसे तोड़ने लगा। उसकी तैयारी मुकम्मल थी। शोर सुन पहले गंगाराम आया, फिर धीरे-धीरे कालोनी में सो रहे तमाम लोग एकत्रित हो गये। लोगों ने उसे समझाने और ऐसा करने से रोकने का प्रयास किया। जवाब में सुभाष ने लोगों पर गोलियां दागनी शुरू कर दीं। परिणामतः पड़ोस में रहने वाले अनिल मण्डल की मौके पर ही मौत हो गयी तथा तीन-चार लोग घायल हो गये।

फिर तो चारो तरफ अफरा-तफरी मच गयी। लोगों ने चन्द कदम की दूरी पर रहने वाले भाजपा विधायक से फोन पर सम्पर्क किया, जवाब मिला पुलिस के पास जाओ। थाने पर सम्पर्क करने पर उत्तर था, अभी फोर्स नहीं है। सुबह तक, जब पुलिस घटना स्थल पर नहीं पहुंची और न ही प्राथमिकी दर्ज हुई तो आक्रोशित लोगों ने मण्डल की लाश के साथ थाने का घेराव किया। तब जाकर प्राथमिकी दर्ज हुई। उधर जैसे-जैसे समय बीतता जा रहा था, लोगों का आक्रोश बढ़ता गया। थाने से लौटी गुस्सायी भीड़ ने सुभाष मिश्रा के घर में आग लगा दी।

इस बीच मौके पर पहुंची पुलिस ने इस आगजनी को रोकने का प्रयास किया। भीड़ में से किसी अराजक तत्व द्वारा पुलिस पर फेंके गये पत्थर से कोतवाल का ड्राइवर घायल हो गया।

बस, फिर तो शुरू हो गया पुलिस का ताण्डव। देखते ही देखते पी.ए.सी. की बटालियनें आ गयीं और क्षेत्राधिकारी के प्रत्यक्ष निर्देशन में तीन घण्टे तक वो कहर बरपा हुआ जिसे सुन कर ही खून खौल उठे। भूखे कुत्तों की तरह जनता के "रक्षक" जनता पर टूट पड़े। गिरते-पड़ते जो भाग सकते थे वे तो फिर भी बच गये। लेकिन जो पुलिस के हत्थे चढ़ गया उसकी बेरहमी से पिटाई हुई इसके बाद घरों के दरवाजे तोड़कर औरतों-बच्चों-बूढ़ों तक को घसीट-घसीट कर मारा गया। पुलिस-पी.ए.सी ने खूब लूटपाट मचायी। मृतक मण्डल के शोकाकुल परिवार के सदस्यों की बुरी गत बनाई गई। चारो तरफ या तो खदी वर्दीधारियों के जूतों और डण्डों की आवाजें थीं या फिर निरीह निहत्थी जनता की चीखें व कराहें। तीन घण्टे की इस बर्बरता के बाद महिला और 29 पुरुषों सहित बेगुनाह और पिटाई से घायल 41 लोगों को फर्जी मुकदमों में गिरफ्तार भी कर लिया गया। गिरफ्तार लोगों में एक ऐसी महिला भी थी जिसकी गोद में 22 दिन का बच्चा था। काफी कोशिशों के बाद किसी तरह लोगों ने इसे छुड़ाया। दहशतजदा लोगों ने कालोनी छोड़कर अन्यत्र शरण ले ली। घायलों का इलाज तक होना मुश्किल हो गया। चालीस स्त्री-पुरुषों की थाने में फिर पिटाई हुई और फिर उन्हें फर्जी मुकदमों में जेल की सींखचों के पीछे कैद कर दिया गया। तमाम कोशिशों के बाद 17 दिनों के बाद ही जमानत पर गिरफ्तार लोगों की रिहाई सम्भव हो सकी।

इधर खौफ और आक्रोश में जी रही यह गरीब बंगाली आबादी न्याय का गुहार कर रही है; उधर चुनावी सौदागर अपनी वोट की रोटी सेंकने में मशगूल हैं। जुल्म के शिकार लोग राज्यपाल मुख्यमंत्री से लेकर सभी प्रमुख स्थानों पर फैक्स-टेलीग्राम कर चुके हैं। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को पत्र फैक्स से भेज चुके हैं। लेकिन, सब कुछ वही ढाक के तीन पात। मण्डल के हत्यारे का मूल मुद्दा गौड़ पड़ने लगा है। पुलिसिया दमन की कहानी को भी ठण्डे बस्ते में डाला जा रहा है। इन गरीबों ने तिनका-तिनका करके जो जोड़ा था उसे भी खाकी वर्दी धारी सरकारी लुटेरे उठा ले गये। और अब बंगाली-गैर बंगाली के साम्प्रदायिक रंग में इसे रंगने की साजिश चल रही है।

यह तो है फासिस्ट भाजपा शासन की महज एक बानगी। आज के दौर में पुलिस जुल्म और गरीब आबादी को उसके जगह-जमीन से उजाड़ना आम बात बन चुकी है। समाज में जैसे-जैसे विसंगतियां बढ़ती जा रही है, शासनतंत्र के निरंकुश हमले बढ़ते जा रहे हैं। शासनतंत्र लगातार ज्यादा चाक-चौबंद होता जा रहा है। भारतीय पुलिस अपनी अमानवीय संवेदनशून्यता, अपराधों पर अपने नगण्य नियंत्रण, फर्जी मुठभेड़ों में लोगों की हत्याओं और हिरासत में होने वाली मौतों के लिए ज्यादा कुख्यात होती गयी है।

लेकिन ऐसा नहीं है कि जनता ऐसे ही जोरो-जुल्म सहती रहेगी और चुप बैठेगी। लोगों में जो नफरत और गुस्सा बढ़ रहा है, निश्चित ही वो विस्फोट का रूप लेगा। आज भी, देश के विभिन्न हिस्सों में लोग संघर्ष कर रहे हैं लेकिन उनका संघर्ष बिखरा हुआ है। दमनकारियों के हौसले बुलन्द हैं। कल यह संघर्ष संगठित रूप लेगा और तब जनता अपने ऊपर हुए एक-एक जुल्म का हिसाब लेगी। दुनिया का बड़ा से बड़ा तानाशाह भी जनता के वेगवाही तूफान के आगे टिक नहीं सका है। आज जरूरत है अपने गुस्से को जज्ब करने की, अपनी ताकत जुटाने की, जाति-क्षेत्र-धर्म की लड़ाइयों से ऊपर उठने की और जुल्म के सताये लोगों के संगठित होने की, ताकि अपने वाला कल उनका हो। एक ऐसा समाज बने जिसमें लोग जोरोजुल्म से आजाद हों।

मेहनतकश साथियों के लिए कुछ जरूरी पुस्तकें

बिगुल पुस्तिका श्रृंखला

कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा *—लेनिन* —5/-

मकड़ा और मक्खी *—विल्हेल्म लीब्कनेख्त* —2/-

ट्रेडयूनियन काम के जनवादी तरीके *—सर्जी रोस्तोवस्की* —2/-

दायित्वबोध पुस्तिका श्रृंखला

अनश्वर हैं सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएं —10/-

समाजवाद की समस्याएं, पूंजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति —12/-

क्यों माओवाद —10/-

बिगुल विक्रेता साथी से मांगें या इस पते पर 12 रुपए रजिस्ट्री शुल्क जोड़कर मनीआर्डर भेजें :

जनचेतना
3/274, विश्वास खण्ड,
गोमतीनगर, लखनऊ-226010
फोन (नया नंबर): 308896

बिगुल यहां से प्राप्त करें

• शहीद पुस्तकालय, द्वारा डा. दूधनाथ, जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ • मौर्या बुक स्टाल, सआदतपुरा (निकट रोडवेज), मऊ जनचेतना, जाफरा बाजार, गोरखपुर • विजय इन्फार्मेशन सेन्टर, कचहरी बस स्टेशन गोरखपुर • विश्वनाथ मिश्र, नेशनल पी.जी. कालेज, बड़हलगंज, गोरखपुर • ओमप्रकाश, 69, बाबा का पुरवा (पुराना), पेपर मिल रोड, निशातगंज लखनऊ जनचेतना स्टाल, निकट काफी हाउस, हजरतगंज, लखनऊ, (शाम 5 से 8.30) • जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ • राहुल फाउण्डेशन, 3/274, विश्वास खण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ • विमल कुमार, बुक स्टाल, निकट नीलगिरि काम्प्लेक्स, ए ब्लाक, इंदिरानगर, लखनऊ • विजय कुमार, 55/3 ई.डब्लू.एस, आवास विकास कालोनी रुद्रपुर, ऊधमसिंहनगर • रामपाल सिंह भारतीय जीवन बीमा निगम, आवासविकास, रुद्रपुर, ऊधमसिंहनगर • रवीन्द्र कुमार, भारतीय जीवन बीमा निगम, शाखा कार्यालय, पन्तनगर • एल. पन्त, द्वारा दिग्विजय सिंह, पावर हाउस के पीछे, वार्ड नं. 13, म.नं. 41, लक्ष्मीनगर, गजरौला, जि. ज्योतिबा फुलेनगर • कृष्णगोविन्द सिंह, बी-18, बिड़ला छात्रावास, बी.एच.यू., वाराणसी • प्रोग्रेसिव बुक सेंटर, विश्वनाथ मंदिर गेट, बी.एच.यू., वाराणसी • राजीव वर्मा, द्वारा डा. जे.पी. वर्मा, बी.पी.82, पटेलनगर, मुगलसराय • राजेन्द्र प्रसाद, रेनु मेडिकल की गली, मुख्य सड़क, रेणुकूट, सोनभद्र • सत्यम वर्मा, 81, समाचार अपार्टमेंट, मयूर विहार, दिल्ली • ललित सती, एल.आई.सी, फैज रोड शाखा, दिल्ली • डी. के. सचान, कृषि विज्ञान केन्द्र, विकास भवन, नई कलक्ट्रेट, गाजियाबाद • सुनील कुमार सिंह, सेक्टर-12 बी, 3159, बोकारो इस्पातनगर, बोकारो • गणपतलाल, ग्राम काजी रसूलपुर, पो. तेघड़ा, बेगूसराय • पीपुल्स बुक हाउस, पटना कालेज के सामने, पटना • समकालीन प्रकाशन, बिक्री केन्द्र आजाद मार्केट, पीरमुहानी, पटना • विकल्प सांस्कृतिक मोर्चा, 22, स्वास्तिक काम्प्लेक्स, रसल चौक, जबलपुर • नरभिण्डर सिंह, द्वारा डा. सुखदेव हुंदल, ग्रा./पो. संतनगर, जिला-सिरसा • राकेश गोरखा, सरस्वती पुस्तक मंदिर, प्रधान नगर, सिलीगुड़ी, दार्जीलिंग • बुक मार्क, 6, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता • शर्मा बुक स्टॉल, थाना रोड, चराली, तिनसुकिया

नेपाल • विश्व नेपाली पुस्तक सदन, भ्रवनपंथ, पुरनल रुपनदेई

गजरौला औद्योगिक क्षेत्र के मजदूर संघर्ष की राह पर

ए.एस. पी. का मजदूर आन्दोलन निर्णायक मुकाम पर

जीतने की शर्त है धीरज, सूझबूझ और जुझारू एकता को हर कीमत पर कायम रखना

(पेज 1 से आगे)

के मजदूरों ने भी समय-समय पर विभिन्न जनकार्रवाइयों में शिरकत की। पिछले एक दिसम्बर को आन्दोलन के समर्थन में कई कारखानों के मजदूर काला फीता बांधकर काम पर गये। भारतीय किसान यूनियन के कार्यकर्ताओं ने भी पिछले 7 दिसम्बर को मजदूरों के समर्थन में कारखाना गेट पर सभा की।

चार माह लम्बे आन्दोलन को मजदूरों ने योजनाबद्ध ढंग स इस मंजिल पर पहुंचाया है। आज के कठिन दौर में जबकि मजदूरों का कोई भी आन्दोलन बहुत लम्बा नहीं चल पा रहा है, ए. एस.पी. का यह आन्दोलन एक मिसाल बन गया है। इसकी गर्मी ने गजरौला क्षेत्र के अन्य कारखानों के मजदूरों में भी एकजुट होने और अपने हकों के लिए लड़ने का जज्बा पैदा किया है। इन कारखानों में भी संघर्षों की सुगबुगाहट महसूस की जा रही है। इससे अपनी मजदूर विरोधी जालिमाना कारगुजारियों के लिए कुख्यात इस क्षेत्र के मालिकान की नींद हराम हो गयी है और वे खुद भी एकजुट होकर दमन के नये-नये तरीके ईजाद करने की हिकमत में दिन-रात एक कर रहे हैं।

ए.एस.पी. के मालिकान के तमाम दमनात्मक हथकण्डों के बारे में हम 'बिगुल' के पिछले अंकों में विस्तार से दे चुके हैं। साथ ही मजदूरों की एकजुट कार्रवाइयों के बारे में भी हम जानकारी दे चुके हैं। आन्दोलन को मौजूदा निर्णायक मंजिल में पहुंचाने से पहले पिछले 4 नवम्बर को मजदूरों ने शाम को मशाल जुलूस निकाला, जिसमें ए.एस.पी. के अलावा **वाम आर्गेनिक** के मजदूर भी शामिल थे। जुलूस में मजदूर 'हर जोर-जुल्म की टक्कर में संघर्ष हमारा नारा है' 'देशी-विदेशी लुटेरों के खिलाफ व्यापक एकजुटता कायम करो', 'दुनिया के मजदूरो एक हो', 'भगतसिंह की बात सुनो, नयी क्रान्ति की राह चुनो' आदि नारे लगा रहे थे। इसके अगले ही दिन 5 नवम्बर को धरनास्थल पर मजदूरों ने क्रमिक अनशन की शुरुआत कर दी। फिर 15 नवम्बर को मजदूरों ने निषेधाज्ञा तोड़कर कारखाना गेट पर सभा की जिसमें सैकड़ों मजदूरों ने शिरकत की। लेकिन बीस दिनों तक लगातार चलने वाले क्रमिक अनशन के बावजूद जब मालिकान के कान पर जूं नहीं रेंगी तो 26 नवम्बर से दो मजदूर क्षेत्रपाल सिंह और दिनेश आर्य अनिश्चितकालीन भूख हड़ताल पर बैठ गये। फिर कारखाना प्रबन्धतंत्र पर दबाव बढ़ाने के लिए 28 नवम्बर से कारखाने में आवाजाही पर भी रोक लगा दी।

जोर-जबर्दस्ती के हथकण्डों को नाकाम देखते हुए और मजदूरों की बढ़ती एकजुटता से अब कारखाने के प्रबन्धक पैंतरा बदलकर आन्दोलन को तोड़ने की दूसरी तरकीब पर अमल कर रहे हैं। श्रम विभाग और स्थानीय प्रशासन के अधिकारियों से सांठ-गांठ कर अब वे वार्ताओं का नाटक कर रहे हैं। जिससे आन्दोलन लम्बा खिंचता जाये और मजदूरों का धीरज जवाब दे जाये। या फिर आन्दोलन लम्बा खिंचते जाने से हताशा में मजदूर कोई ऐसा बहाना मुहैया करा दें जिससे कारखाने में लॉक आउट करने का मौका मिल जाये। अपने मकसद में कामयाब होने के लिए प्रबन्धतंत्र आन्दोलन के भीतर के दुलमुल तत्वों और अपने दलालों का भी भरपूर सहारा ले रहा है।

ए.एस.पी. का आन्दोलन अब ऐसी मंजिल में जा पहुंचा है, जहां से मजदूर अब पीछे नहीं हट सकते। अब यह आर-पार की लड़ाई बन चुकी है। मजदूरों के लिए यह अग्निपरीक्षा की घड़ी है। इस मुकाम पर जिस चीज की सबसे ज्यादा जरूरत है, वह है धीरज की और सूझबूझ की। अक्सर ऐसा हुआ है कि ऐसी निर्णायक घड़ियों में धीरज का बांध टूट जाता है। खासकर ऐसे आन्दोलन में जो लम्बे समय से चल रहा हो। ऐसे समय में नेतृत्व की भूमिका सबसे अहम हो जाती है। आम मजदूरों ने नेतृत्व पर जो भरोसा सौंपा है, उस पर नेतृत्व खरा उतरता है या नहीं यह जल्दी ही साफ हो जायेगा। लेकिन, **आम मजदूरों को अपना धीरज बनाये रखना होगा और नेतृत्व पर भी लगातार चौकसी बनाये रखनी होगी, तभी इतने शानदार संघर्ष को कामयाबी की मंजिल तक पहुंचाया जा सकता है।**

ए.एस.पी. के आन्दोलन को यदि कामयाबी मिलती है तो यह एक ऐसी मिसाल बनेगी जो इस बात में मजदूरों का भरोसा पक्का कर देगी कि वे मौजूदा पूंजीवादी व्यवस्था में सिर्फ और सिर्फ संघर्षों के जरिये ही अपना अस्तित्व बचाये रख सकते हैं। संघर्षों में यह बढ़ी हुई आस्था उन्हें गैरबराबरी और नाइंसाफी पर टिके समूचे सामाजिक ढांचे को ध्वस्त करने और नया समाज बनाने के संघर्ष के रास्ते पर आगे बढ़ने की प्रेरणा देगी।

अगर किन्हीं वजहों से मजदूरों को पीछे हटना पड़ता है तो इससे भी मजदूरों को बेशकीमती सबक हासिल होंगे। इससे हताश होने के बजाय उन्हें अपने संघर्ष की कमियों को गम्भीरता से जांचना- परखना होगा और नये सिरे से संघर्षों की तैयारी में जुट जाना होगा।

क्षेत्र के अन्य कारखानों में भी जारी है सुगबुगाहट

ए.एस.पी. के मजदूरों के शानदार संघर्ष की आंच गजरौला औद्योगिक क्षेत्र के अन्य कारखानों के मजदूरों तक भी पहुंच चुकी है। इसकी गर्मी से उनके अन्दर भी सुगबुगाहट दिखायी देने लगी है। यह कोई अनहोनी बात भी नहीं है। हमेशा ऐसा ही होता है। एक कारखाने के संघर्ष की आंच से आसपास के कारखाने के मजदूरों को गर्मी मिलती है और वे खुद संघर्षों में खिंच आते हैं। क्योंकि, हर कारखाने के भीतर मजदूरों की जिन्दगी की एक ही कहानी है। इसीलिए, यह अनायास नहीं है कि **ए.एस.पी. के मजदूर भाइयों के संघर्ष में रौनक ऑटोमोटिव लि., सी.एन.सी. मेटल्स लि., वाम आर्गेनिक, इन्सिल्को शिवालिक (हिन्दुस्तान लीवर)** आदि कारखानों के मजदूरों ने हर तरह से सहयोग दिया। न केवल जुलूस व सभाओं में वे शामिल हुए वरन् खुले दिल से आर्थिक सहयोग भी दिया। यहां प्रस्तुत है इन कारखानों के मजदूरों की जिन्दगी और संघर्षों की एक तस्वीर!

वाम आर्गेनिक

क्षेत्र के हवा-पानी-जमीन में जहर फैलाने के लिए बदनाम वाम आर्गेनिक लि. कारखाने में आजकल मजदूरों-कर्मचारियों के सिर पर छंटनी की तलवार लटकी हुई है। बाजार की मुसीबतों का बहाना बनाकर अब तक 42 कर्मचारियों की छंटनी हो चुकी है। अभी ये छंटनियां एकाउण्टस्, स्टोर, लैब आदि से सम्बन्धित स्टाफ से शुरू हुई हैं। इससे पूर्व कुछ मजदूरों को पुणे में लगे नये कारखाने में स्थानान्तरित किया गया था। कारखाने के अन्दर भी अनुभवी कुशल मजदूरों के विभाग बदलकर उन्हें कम महत्व के काम पर लगा दिया गया है। वाम आर्गेनिक के मैनेजमेण्ट के षड्यंत्रों को भांपकर मजदूरों ने फैक्ट्री स्टाफ से एकजुटता बनाई और संघर्ष की राह चुनी। श्रम विभाग व प्रशासन के अधिकारियों द्वारा न सुने जाने के बाद मजदूरों-कर्मचारियों ने 19 अक्टूबर को कारखाने के मुख्य द्वार से दो सौ मीटर की दूरी पर एक सभा की। जिसमें ए.एस.पी. के संघर्षरत मजदूरों ने बड़ी संख्या में हिस्सेदारी की। मजदूरों-कर्मचारियों का यह संघर्ष अभी परवान न चढ़ सका। इसके पीछे मुख्य कारण अपरिपक्व नेतृत्व और आन्दोलन में एक बुर्जुआ नेता की दखलंदाजी रहा। आन्दोलन को बिखरता देख कुछ कर्मचारी निराश होकर फैक्ट्री से अपना हिसाब लेकर चले गये, किन्तु बाकी मजदूरों-कर्मचारियों ने अभी हार नहीं मानी है। आखिर बीस वर्षों तक कारखाने में खून-पसीना एक करने वाले मजदूरों को जब मैनेजमेण्ट ने सड़क पर ढकेल दिया, तो अब अपने परिवारों के साथ ये मजदूर कहां जायें? हालात मजदूरों-कर्मचारियों को संघर्ष करने के लिए मजबूर कर रहे हैं।

मजदूरों के पेट पर लात मारने वाला यह कारखाना बिड़ला समूह का है। वही बिड़ला जिनके नाम से पूरे देश में मन्दिरों का एक जाल है। जो धर्म के नाम पर तो करोड़ों रुपये खर्च करते हैं लेकिन जिनके कारखानों में मजदूरों के शरीर से उनके खून की आखिरी बूंद भी निचोड़कर मुनाफे की हवस खत्म नहीं होती।

'वाम आर्गेनिक लि.' में कई तरह के रसायनिक उत्पादक, दवा-कीटनाशकों का उत्पादन किया जाता है। यहां पर खतरनाक कैमिकल्स के बीच में रहकर काम करना पड़ता है। फैक्टरी में काम कर रहे एक हजार से अधिक दिहाड़ी मजदूरों को 45 से 60 रुपये के बीच मजदूरी दी जाती है। बारह-बारह घण्टे काम करने के बावजूद ओवरटाइम का भुगतान दुगुना नहीं किया जाता। बाहरी चमक-दमक वाले इस कारखाने ने मजदूरों ही नहीं, आसपास के छोटे-छोटे किसानों का भी शोषण किया है। कारखाना क्षेत्र में ली गई जमीनों का किसानों को मुआवजा नहीं दिया गया। कारखाने से निकलने वाले धुएं, पानी और राख का क्षेत्र की जनता के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ा है, साथ ही खेती-बाड़ी को भी नुकसान हो रहा है। इन स्थितियों को देखते हुए आज, वाम आर्गेनिक के मजदूरों-कर्मचारियों को क्षेत्र के छोटे किसानों और आम जनता को साथ लेकर कारखाने के मालिकान के जुल्म के खिलाफ व्यापक एकजुटता कायम कर संघर्ष को आगे बढ़ाना होगा, अपना अस्तित्व बचाने का यही एक रास्ता है।

इन्सिल्को

इन्सिल्को कारखाने में मजदूरों के एकताबद्ध होते ही मैनेजमेण्ट का खूंखार रूप सामने आ गया है। पिछले माह उसने कारखाने के पांच मजदूरों को निलम्बित कर दिया। इन मजदूरों को मारपीट के एक फर्जी केस में फंसाया गया है। दरअसल, इन्सिल्को कारखाने के मालिकान के जुल्म व शोषण के खिलाफ मजदूरों ने संगठित होना शुरू कर दिया है। मजदूरों ने जैसे ही यूनियन रजिस्ट्रेशन कराने की कोशिश की, प्रबन्धतंत्र सतर्क हो गया। मजदूरों ने अपने साथियों के निलम्बन के विरोध में उत्पादन गिराकर अपना विरोध प्रकट किया।

सिलिकॉन पाउडर का उत्पादन करने वाला इन्सिल्को लि. एक अति आधुनिक कारखाना है। भरतिया ग्रुप से यह कारखाना हाल ही में जर्मनी के डबूसा हाल्स' ग्रुप ने ले लिया है। इस कारखाने में लगभग सौ अस्थायी व अस्सी स्थायी मजदूर काम करते हैं। अस्थायी मजदूर जो ठेकेदार के अधीन काम करते हैं, मात्र पैंतालिस रुपये दिहाड़ी पाते हैं। कारखाने में श्रम कानूनों का उल्लंघन आम बात है। इस कारखाने में जहां एक ओर प्रबन्धकीय स्टाफ ऊंची-ऊंची तनख्वाहें पाता है, सुविधा युक्त बंगलों में रहता है, वहीं स्थायी मजदूरों को सिर्फ 2000 से 3500 रुपये के बीच प्रतिमाह वेतन मिलता है।

रौनक ऑटोमोटिव

उत्तर प्रदेश सरकार के मजदूरी सम्बन्धित शासनादेश (जी.ओ.) को लागू करवाने और मजदूरों को बांटने की मैनेजमेण्ट की चालों के खिलाफ 'रौनक आटोमोटिव लि.' के मजदूर कमर कस रहे हैं। 1996 में तीन माह तक चले आन्दोलन के बाद एक बार फिर मजदूरों में सुगबुगाहट है। उत्तर प्रदेश सरकार का जी.ओ. अकुशल मजदूर को 2535 रुपये, अर्द्धकुशल मजदूर को 2985 रुपये तथा कुशल मजदूर को 3090 रुपये प्रतिमाह वेतन देने की बात करता है। इसी वेतन मानक को कारखाने में लागू करवाने के मामले को मजदूरों ने लेबर कोर्ट, बरेली में डाल दिया है। 'रौनक' का प्रबन्धतंत्र मजदूरों के भविष्यनिधि (पी.एफ.) खाते में जाने वाला सेवायोजक का अंश भविष्यनिधि कार्यालय को नहीं भेजता। इस धनराशि को वह अपने ही बनाये ट्रस्ट में जमा करता है। यह मुद्दा भी मजदूरों ने लेबर कोर्ट में उठाया है। इधर, मजदूरों की एकता को तोड़ने के लिए प्रबन्धतंत्र चालें चल रहा है और दमन की कार्रवाइयां कर रहा है। उसने दो श्रमिक प्रतिनिधियों को मार्केटिंग में स्थानान्तरित करने की योजना बनाई। इनमें से एक श्रमिक प्रतिनिधि ने जाने से मना किया तो उसे ड्यटी आने से रोक दिया गया।

रौनक ग्रुप का यह कारखाना विभिन्न गाड़ियों के गेयर बॉक्स के पार्ट्स तैयार करता है। इस कारखाने में लगभग 180 स्थायी और सौ अस्थायी मजदूर काम करते हैं। स्थायी मजदूरों को 2500 से 3500 के बीच वेतन मिलता है। अस्थायी मजदूर 40 से 45 रुपये दिहाड़ी पर काम करने को मजबूर हैं। मजदूरों में भेद पैदा करने और बांटने के लिए मैनेजमेण्ट कई उपाय करता है, जैसे कि हर छह माह पर वह एक मजूदर को बेहतर सेवाओं के लिए पुरस्कार देने के लिए चुनता है। रौनक के मजदूरों ने मालिक-मैनेजमेण्ट के जोर-जुल्म के खिलाफ 1996 में तीन माह लम्बा संघर्ष किया था। लेकिन चुनावबाज छुटभैये नेताओं के हाथों में पड़कर और नेतृत्व की कुछ कमजोरियों की वजह से आन्दोलन जीत तो हासिल न कर सका, किन्तु आगे के संघर्षों के लिए कुछ सीखें दे गया। इन्हीं सीखों को गांठ बांधकर आज 'रौनक' के मजदूरों को आगे बढ़ना है।

शिवालिक सैल्यूलोज

बहुराष्ट्रीय कम्पनी हिन्दुस्तान लीवर के इस कारखाने के मजदूरों ने क्षेत्र में चल रहे ए.एस.पी. के मजदूरों के संघर्ष में सक्रिय भागीदारी की है। यहां के मजदूरों ने मैनेजमेण्ट द्वारा गठित वर्क्स कमेटी से आगे बढ़कर अपनी यूनियन बनाने के प्रयास किये हैं। साबुन की पैकिंग बनाने वाले इस कारखाने में लगभग डेढ़ सौ स्थायी और सौ से अनियमित ठेके के मजदूर काम करते हैं। स्थायी मजदूरों को 3000 से 3500 रुपये के बीच वेतन

(पेज 5 पर जारी)

भूमण्डलीकरण के खिलाफ पूरी दुनिया में तीखे हो रहे हैं मजदूर संघर्ष

• सुखदेव

आज पूंजी के भूमण्डलीकरण की चर्चा का बाजार पूरी तरह गर्म है। परन्तु मजदूर वर्ग के लिए पूंजी के भूमण्डलीकरण का मतलब क्या है? मजदूर वर्ग के लिए पूंजी के इस भूमण्डलीकरण का मतलब पूंजी द्वारा उसके बचे-खुचे अधिकारों को भी छीन लेना है। पूंजी ने आज मजदूर वर्ग पर चौतरफा हमला बोल दिया है। यह हमला आर्थिक भी है, राजनीतिक भी तथा वैचारिक भी। पूंजी के भूमण्डलीकरण के साथ-साथ मजदूर जमात पर इन हमलों का भी भूमण्डलीकरण हो गया है। आज जब दुनिया में पूंजी के भूमण्डलीकरण की आंधी चल रही है तो दुनिया के किसी भी देश का मजदूर वर्ग इसके हमलों से बचा नहीं है।

बड़े पैमाने पर मजदूरों का रोजगार छीना जा रहा है। मजदूरों की यूनियनें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से तोड़ी जा रही हैं और जहां कहीं भी मजदूर इसका प्रतिरोध करते हैं उन पर लाठियां-गोलियां बरसाई जा रही हैं। 'पूंजीवाद के स्वर्ग' कहे जाने वाले विकसित देशों में भी मजदूर वर्ग पूंजी के भयानक हमले का शिकार है।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद, विकसित देशों के पूंजीपति वर्ग ने "कल्याणकारी राज्य" की कीन्सवादी नीतियां अपनाकर, वहां के मजदूर वर्ग को काफी सहूलियतें मुहैया कराई थीं। मजदूर वर्ग को क्रान्तिकारी संघर्षों के रास्ते से भटकाया गया था। पूंजीपति वर्ग द्वारा कीन्सवादी नीतियां अपनाने के पीछे मुख्य कारण संसार में एक मजबूत समाजवादी खेमे का अस्तित्व और शक्तिशाली मजदूर लहर का होना था। क्रान्ति के डर से विकसित देशों के पूंजीपति वर्ग को अपने मजदूरों को कुछ सहूलियतें देनी पड़ीं। मगर अब न तो दुनिया में कोई समाजवादी खेमा ही मौजूद है और न ही कहीं शक्तिशाली मजदूर लहर है, जो पूंजीवाद के लिए खतरा हो। इधर, भूमण्डलीकरण के चलते दुनिया भर के पूंजीपतियों की गलाकाट प्रतियोगिता बहुत तीखी हो गई है। इसलिए, अब पूंजी 'कल्याणकारी राज्य' का नकाब उतारकर अपने असली खूंखार रूप में सामने आ रही है। वह अपने मुनाफे को सुरक्षित रखने तथा उसमें असीम बढ़ोत्तरी की हवस को पूरा करने के लिए मजदूर जमात पर चौतरफा हमला बोल रही है।

आज पूंजी दुनिया भर में 'लचीले श्रम' का पाठ पढ़ा रही है। जिसका मतलब है जब जरूरत हुई मजदूर को काम पर रखा और जब चाहा काम से निकाल दिया। मजदूर की उजरत तथा अन्य सहूलियतें अब पूंजीपति के रहमो-करम पर होंगी। इस तरह अब दुनिया के पैमाने पर पूंजी और श्रम के दरम्यान एक नये युद्ध का बिगुल बज गया है। विकसित देशों, जहां पर वैज्ञानिक तथा तकनीकी विकास बहुत अधिक हुआ है, के सिद्धान्तकारों द्वारा यह प्रचार किया जाता रहा है कि अब वर्ग तथा वर्ग संघर्ष का अस्तित्व नहीं रहा। हमारे देश के क्रान्तिकारी खेमे के भी कुछ लोग इनके मुरीद बन गये हैं। विकसित देशों में उठ रहे मजदूर आन्दोलन इन सिद्धान्तकारों के मुंह पर तमाचे की तरह हैं। यहां पर हम विकसित देशों में पिछले दिनों में हुए कुछ मजदूर आन्दोलनों की चर्चा करना चाहेंगे।

आस्ट्रेलिया

1996 में आस्ट्रेलिया की सरकार ने 'वर्क प्लेस रिलेशंस एक्ट' (WRA) नामक कानून पारित किया। इस कानून का उद्देश्य मजदूरों को यूनियनों के बजाय व्यक्तिगत तौर पर मालिकों के साथ समझौता करने को उत्साहित करना था। इसके लिए सरकार ने मजदूरों को कई प्रकार के लालच भी दिये। लेकिन सरकार की मुराद पूरी न हो सकी। मदजूर अभी भी मालिकों के साथ व्यक्तिगत तौर पर किसी किस्म का समझौता करने के बजाय यूनियन के जरिये ही कोई भी समझौता करने को अधिक सुरक्षित समझते थे। इसलिए सरकार ने मजदूर यूनियनों को तेजी से खत्म करने के लिए इस एक्ट (WRA '96) में संशोधन किया। नये कानून में मजदूरों को दी गई सहूलियतें वापस लेने, तनख्वाहें कम करने, नाजायज छंटनियों को मान्यता देने तथा ट्रेड यूनियन अधिकारों को छीन लेने की धाराएं शामिल की गईं।

इस कानून की आड़ में आस्ट्रेलियाई संगठित मजदूरों पर पहला हमला पैट्रिक कम्पनी ने किया। यह कम्पनी जहाजों पर माल लादने तथा उतारने वाली दो सबसे बड़ी कम्पनियों में से एक है। इस कम्पनी ने यूनियन में संगठित दो हजार मजदूरों को काम पर से हटाकर उनकी जगह गैर संगठित नये मजदूरों को काम पर रख लिया। कम्पनी का संगठित मजदूरों पर यह हमला आस्ट्रेलियन सरकार की उस योजना का ही हिस्सा था, जिसके तहत वह आस्ट्रेलिया के समन्दरी तटों से मजदूर यूनियनों को खत्म करना चाहती है, ताकि श्रम मंडी को 'लचीला' बनाया जा सके और श्रम की अंधी लूट की जा सके। आस्ट्रेलियन कम्पनियां इस 'लचीले श्रम' की लूट के बल पर अन्तरराष्ट्रीय बाजार में टिक सकें। मजदूरों ने कम्पनी के इस हमले का जवाब मेलबोर्न तथा सिडनी में जबर्दस्त हड़ताल से दिया। मजदूर यूनियनों के आह्वान पर दस हजार मजदूरों ने हड़ताल में शिरकत की।

आस्ट्रेलियाई मजदूरों के इस संघर्ष को आस्ट्रेलिया के अन्य मेहनतकश अवाम की हिमायत के साथ ही साथ अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर भी मजदूरों का समर्थन प्राप्त हुआ। अन्य देशों के मजदूरों ने रंग, नस्ल, भाषा का भेद भुलाकर अपने संघर्षशील आस्ट्रेलियन साथियों का समर्थन किया। दक्षिण अफ्रीका, जापान, अमेरिका, भारत आदि देशों के मजदूरों ने आस्ट्रेलियन जहाज पर से असंगठित (यूनियन से असम्बद्ध) मजदूरों द्वारा लादे गये माल को उतारने से इंकार कर दिया। मजदूरों की इस दृढ़, फौलादी एकता के आगे आखिरकार आस्ट्रेलियन कम्पनी को घुटने टेकने ही पड़े। कम्पनी से निकाले गये दो हजार मजदूरों को कम्पनी को वापस काम पर लेना पड़ा। कुछ ही समय में आस्ट्रेलिया की ट्रेड यूनियनों ने इस श्रमविरोधी कानून WRA96 के खिलाफ झण्डा बुलंद कर दिया। सिडनी शहर से शुरू हुआ यह आन्दोलन जल्दी ही पूरे देश में फैल गया। मजदूरों की एकजुटता के आगे झुकते हुए आस्ट्रेलियाई संसद के ऊपरी सदन को इस बदनाम कानून की बहुत सी धाराएं वापस लेनी पड़ीं। आस्ट्रेलियाई मजदूरों के लिए यह एक महत्वपूर्ण जीत है, जो कि और भी बड़ी जीतों की आशा बंधाती है।

बोइंग ने घुटने टेके

दुनिया की सबसे बड़ी एयरोस्पेस कम्पनी 'बोइंग' के इंजीनियरों तथा तकनीशियनों ने अपनी मांगों के समर्थन में चालीस दिन लम्बी हड़ताल की। अमेरिका के इतिहास में 'सफेद कालर' मजदूरों की यह सबसे लम्बी हड़ताल थी। हड़ताल इस वर्ष 9 फरवरी को शुरू हुई जिसमें कम्पनी के सत्रह हजार इंजीनियरों और तकनीशियनों ने काम ठप कर दिया। इस हड़ताल से कम्पनी को भारी नुकसान उठाना पड़ा। कम्पनी के अधिकारियों ने हड़ताल को तोड़ने के लिए तरह-तरह के हथकण्डे अपनाये, मगर उनकी एक न चली। आखिर चालीस दिन बाद कम्पनी को झुकना पड़ा। उसे कई महत्वपूर्ण मांगें मानने को मजबूर होना पड़ा। इन मांगों में मेडिकल तथा अन्य सुविधाओं में बढ़ोत्तरी, योग्यता अनुसार तनख्वाह में वृद्धि, प्रति वर्ष कम से कम तीन प्रतिशत वेतन वृद्धि शामिल हैं। विश्लेषकों का मानना है कि बोइंग के इंजीनियरों तथा तकनीशियनों की इस हड़ताल का अमेरिका में प्राइवेट सैक्टर में ट्रेड यूनियन लहर पर जबर्दस्त सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। परम्परागत तौर पर यह क्षेत्र ट्रेड यूनियन आन्दोलन से लगभग अछूता ही रहा है।

फोर्ड में छंटनी का जबर्दस्त विरोध

दुनिया का ऑटोमोबाइल उद्योग आज मंदी का शिकार है। आजकल यह उद्योग अति उत्पादन के संकट में फंसा हुआ है। आने वाले दिनों में संकट के और बढ़ने के आसार हैं। जैसा कि हमेशा होता है, पूंजीपति अपने संकटों का बोझ मजदूरों के कंधों पर ही लादते हैं। अति उत्पादन के संकट का बोझ उठाने में असमर्थ कम्पनियां उत्पादन में कमी ला रही हैं, जिससे कई कारखाने बन्द हो रहे हैं तथा हजारों मजदूरों का रोजगार छिन रहा है। फोर्ड, जो कि दुनिया की सबसे बड़े ऑटोमोबाइल कम्पनियों में से एक है, ने ब्रिटेन में डेगन हाफ नामक स्थान पर लगा हुआ अपना कारखाना बन्द करने का फैसला कर लिया है। इसे किश्तों में बन्द करने की योजना के तहत फोर्ड ने ऐलान किया कि डेगनहाफ के अपने कारखाने में वह सिर्फ चौदह सौ मजदूरों को ही काम पर रखेगी। कारखाने में उस समय आठ हजार मजदूर काम पर थे। मजदूरों ने इस वर्ष 24, 29 फरवरी तथा 6 और 8 मार्च को हड़ताल के जरिये फोर्ड मैनेजमेण्ट को यह चेतावनी दी कि वह रोजगार छीनने के मैनेजमेण्ट के नापाक इरादों को कामयाब नहीं होने देंगे।

अर्जेण्टीना

अर्जेण्टीना सरकार की जनविरोधी आर्थिक नीतियों के खिलाफ इस वर्ष नवम्बर माह के अन्तिम सप्ताह में वहां की जनता सड़कों पर उतर आई। एक वर्ष के भीतर यह तीसरी आम हड़ताल थी, जिसने अर्जेण्टीना के हुक्मरानों को हिलाकर रख दिया। बढ़ती बेरोजगारी, गरीबी और सरकार की "पेट पर पट्टी बांधो" नीति के खिलाफ 24 नवम्बर को पूरा अर्जेण्टीना बन्द रहा। लाखों आन्दोलनकारियों ने हाथों में तख्तियां लिये, नगाड़े पीटते, आतिशबाजी करते हुए अर्जेण्टीना के सभी मुख्य शहरों में मार्च किया। चक्का जाम रहा और सारे व्यावसायिक प्रतिष्ठान बंद रहे। ट्रेड यूनियन नेताओं के अनुसार 98 फीसदी काम बन्द रहे। इस दौरान प्रदर्शनकारियों की पुलिस से तीखी झड़पें हुईं। 34 आन्दोलनकारियों को गिरफ्तार किया गया। 23 नवम्बर को राजधानी ब्यूनस आयर्स में राष्ट्रपति भवन का रास्ता जाम कर दिया गया था और देश भर में प्रदर्शन हुए। दरअसल, अर्जेण्टीना की अर्थव्यवस्था आई.एम.एफ. और वर्ल्ड बैंक के मकड़जाल में फंसी हुई है। उसने वही नीतियां लागू कीं जो पिछले एक दशक में हिन्दुस्तान में आर्थिक सुधारों के नाम पर की जा रही हैं। हिन्दुस्तान की तरह अर्जेण्टीना की अर्थव्यवस्था भी भयंकर मंदी से गुजर रही है उसका विदेशी कर्ज अगले वर्ष तक बढ़कर 20 अरब डालर हो जायेगा।

भूमण्डलकरण के मौजूदा दौर में जिधर नजर दौड़ाइये—एक ही आलम है। मजदूर-मेहनतकश जनता की तबाही और उसके खिलाफ संघर्षों की रपटें अन्य पश्चिमी साम्राज्यवादी मुल्कों—फ्रांस, जर्मनी, इटली, स्पेन आदि तथा एशिया-अफ्रीका-लातिन अमेरिका के अन्य देशों से भी आ रही हैं। हुक्मरानों ने हर जगह पलीता बिछा दिया है। अभी यह छिटपुट विस्फोटों के रूप में फूट रहा है। कहने की जरूरत नहीं कि वह दिन करीबतर आता जा रहा है जब यह कभी न खतम होने वाला सिलसिला बन जायेगा।

यह भी तय है कि पूंजीवाद द्वारा मजदूर वर्ग पर किये जा रहे हमलों का कारगर विरोध करने के लिए दुनिया भर के मजदूरों-मेहनतकशों को फिर समाजवाद के फलसफे की ओर मुड़ना ही होगा, क्योंकि इसके बिना पूंजीवाद से निजात पाने का कोई दूसरा रास्ता नहीं है। इसलिए, हिन्दुस्तान की मेहनतकश जमातों को इसी फलसफे की रौशनी में बिना देर किये अपनी तैयारियां तेज कर देनी होंगी। संघर्षों से हासिल किये गये अपने तमाम अधिकारों की हिफाजत के लिए लिए लड़ने के साथ-साथ पूंजीवादी सत्ता को उखाड़कर मेहनतकश की सत्ता कायम करने की भी लड़ाई छेड़नी होगी।

मजदूर वर्ग का अंतिम लक्ष्य—राजनीतिक सत्ता

कार्ल मार्क्स

(यहां हम कार्ल मार्क्स के एक पत्र का अंश प्रकाशित कर रहे हैं जो उन्होंने 23 नवम्बर, 1871 को लन्दन से न्यूयार्क, फ्रेडरिक बोल्टे को भेजा था। इस पत्र में मार्क्स ने पहले इण्टरनेशनल के अनुभवों और उसके भीतर प्रूदों, लासाल, बाकुनिन आदि के अनुयाइयों के साथ चले वैचारिक संघर्षों का समाहार करते हुए मजदूर वर्ग और उसके संगठन तथा आन्दोलन के अन्तिम लक्ष्य और उसे हासिल करने के रास्ते के बारे में संक्षेप में अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। - सम्पादक)

... मजदूर वर्ग के राजनीतिक आन्दोलन का अन्तिम लक्ष्य निश्चय ही अपने लिए राजनीतिक सत्ता हासिल करना है। स्वाभाविक रूप से, इसके लिए आवश्यक है कि मजदूर वर्ग के आर्थिक संघर्षों से पैदा हुआ उसका संगठन पहले से ही कुछ हद तक विकसित कर लिया गया हो।

लेकिन दूसरी ओर, जिस किसी भी आन्दोलन में मजदूर वर्ग एक वर्ग के रूप में शासक वर्गों के साथ मुकाबले पर आता है और उन्हें बाहरी दबाव के जरिये फतह करने की चेष्टा करता है, वह राजनीतिक आन्दोलन होता है। उदाहरणार्थ, किसी फैक्टरी में या किसी व्यवसाय में भी हड़तालों, आदि के जरिये अलग-अलग पूंजीपतियों को काम के घंटे घटाने के लिए मजबूर करना विशुद्ध आर्थिक आन्दोलन है। दूसरी ओर, आठ घण्टे के कार्यदिवस आदि का कानून मनवाने का आन्दोलन राजनीतिक आन्दोलन है। इस तरह, मजदूरों के अलग-अलग आर्थिक आन्दोलनों से हर जगह एक राजनीतिक आन्दोलन विकसित हो जाता है, अर्थात एक वर्ग का आन्दोलन विकसित हो जाता है, जिसका उद्देश्य अपने हितों को एक सामान्य रूप में उपलब्ध करना है, ऐसे रूप में उपलब्ध करना है, जिसकी विशेषता यह है कि वह पूरे समाज के लिए अनिवार्य हो। इस आन्दोलन के लिए यदि कुछ हद तक पहले से संगठन का होना पूर्वमान्य है, तो इसीतरह यह भी सही है कि ये स्वयं संगठन के विकास के साधन होते हैं।

जहां मजदूर वर्ग का संगठन इतना विकसित नहीं होता कि वह सामूहिक सत्ता के विरुद्ध निर्णायक अभियान छेड़ सके, वहां शासक वर्गों के विरुद्ध निरन्तर प्रचार करके तथा उनकी नीति के प्रति विरोधी रुख अपनाकर इस वर्ग को इसके लिए हर हालत में अवश्य प्रशिक्षित करना होगा। वरना वह शासकवर्गों के हाथों का खिलौना बना रहेगा, जैसा कि फ्रांस की सितम्बर क्रान्ति से जाहिर हुआ और जैसा कि एक हद तक इससे भी सिद्ध होता है कि श्री ग्लैडस्टन* और उनकी मण्डली इंगलैण्ड में आजतक सफलतापूर्वक अपना खेल खेले जा रहे हैं।

* ग्लैडस्टन -- इंग्लैंड में लेबर पार्टी के नेता और प्रधानमंत्री --संपादक

पंजाब में प्रवासी मजदूरों पर बढ़ रहे हमले

बिगुल प्रतिनिधि

पंजाब की धरती जो 'सोना' उगलती है, उसको पैदा करने में प्रवासी मजदूरों की हाड़तोड़ मेहनत एक अहम भूमिका निभाती है। बिहार, उ.प्र. की ओर से आने वाली रेलगाड़ियों में लदे ये मजदूर पंजाब में यहां-वहां सभी जगह देखने को मिल जायेंगे। इनमें से कुछ 'सीजन' में आते हैं जो फसल कटाई होने के बाद अपने 'देस' लौट जाते हैं। कुछ यहीं पर रह जाते हैं। पंजाब की खेती में भारी मशीनीकरण होने के बावजूद इन मजदूरों को काम मिल ही जाता है। फैक्टरियों, खेतों, भट्ठों के इलाके में सब्जी बेचने, रिक्शा चलाने तथा अन्य कई काम अब इन्हीं मजदूरों के दम पर चलते हैं। हर छोटे-बड़े शहर में इन मजदूरों की बस्तियां देखी जा सकती हैं। अब पंजाब के द्विभाषी (पंजाबी और हिन्दी) राज्य बन जाने की बात हो रही है। साथ ही इन प्रवासी मजदूरों पर हो रहे हमलों की घटनाएं भी लगातार प्रकाश में आ रही है।

विभिन्न प्रदेशों के पिछड़े तथा गरीब इलाकों से पंजाब आने वाले मजदूरों से, बहुत कम मजदूरी पर, फैक्टरियों और खेतों से लेकर अनाज मंडियों में काम लिया जाता है। साथ ही, ये मजदूर असंगठित होने तथा 'बाहरी' होने के चलते कोई हड़ताल या संघर्ष नहीं कर पाते। इसीलिए स्थानीय उद्योगपति, व्यापारी, धनी किसान तथा आढ़ती पंजाबी मजदूरों के बजाय प्रवासी मजदूरों को काम पर रखना अधिक पसन्द करते हैं, जिसकी वजह से पंजाबी मजदूरों के एक हिस्से को अपना रोजगार छिनता नजर आता है। यह हिस्सा अपने हालात के लिए इन प्रवासी मजदूरों को दोषी ठहराने लगता है। वह यह नहीं समझ पाता कि आखिर किसने इंसान को अपनी जगह-जमीन से उजड़कर दर-दर की ठोकरें खाने को मजबूर किया है।

प्रवासी मजदूरों के खिलाफ नफरत पैदा करने के लिए जहरीला प्रचार आजकल जोरों पर है। पूंजीवादी विकास की तार्किक परिणति के रूप में पंजाब में अपराध बहुत बढ़ रहे हैं। अखबारों में हर रोज कोई न कोई डकैती, हत्या, बलात्कार, अगवा कांड आदि की खबर छपती रहती है। जब कोई ऐसी घटना होती है तो यह प्रचार किया जाता है कि इसके पीछे प्रवासी लोगों का हाथ है। यह प्रचार करने में पुलिस अफसर सबसे आगे होते हैं। इस तरह प्रवासी मजदूरों को अपराधी के तौर पर पेश किया जाता है। दरअसल, पंजाब में खालिस्तानी दौर में पुलिस की ताकत में (संख्या के हिसाब से भी) भारी बढ़ोत्तरी हुई। पुलिस अफसरों ने खालिस्तानी दहशतगर्दों के साथ-साथ बेकसूर नौजवानों का 'एनकाउण्टर' कर तरक्कियां तथा इनाम के रूप ढेर सारी दौलत बटोरी। खालिस्तानी आन्दोलन के खत्म होने के बाद पुलिस "बेरोजगार" हो गई। उसने पैसा कमाने के नये उपाय निकाले जिनमें से एक अपराध करवा कर अपना हिस्सा लेना है। यही कारण है कि चोरी-डकैती की तमाम घटनाओं में पुलिस वाले पकड़े गये हैं। कई जगह पर तो लोगों ने पुलिसिया डकैतों को पीट-पीट कर जान से मार डाला।

प्रवासी मजदूरों के विरुद्ध पंजाब की जनता को भड़काने वाला दूसरा हिस्सा उन लोगों का है जो इन मजदूरों की पंजाब में आमद को पंजाबी भाषा, संस्कृति तथा सिख धर्म को खतरे में पड़ जाने के रूप में देखते हैं। सिख कट्टरपंथी ग्रुप इसमें सबसे आगे हैं। पिछले दिनों 'सिख स्टूडेण्ट्स फेडरेशन' के प्रधान हरमिंदर सिंह गिल ने अखबार में बयान दिया था कि उनका संगठन पंजाब भर में प्रवासी मजदूरों के खिलाफ अभियान चलायेगा। नस्ली अहंकार में डूबे कुछ बुद्धिजीवी भी अखबारों में लेख लिखकर जहर उगल रहे हैं। और अब तो प्रवासी मजदूरों पर हमले भी होने लगे हैं। नीचे हम पिछले कुछ दिनों में ही प्रवासी मजदूरों पर हुए बड़े हमलों की चर्चा कर रहे हैं।

15 सितम्बर की रात को भटिंडा जिले के रामपुरा फूल के प्रवासी मजदूर पुलिसिया हमले के शिकार हुए। फूल थाने के डी.एस.पी. की अगुआई में पुलिस ने सोये हुए प्रवासी मजदूरों को घेरकर उन्हें लाठियों तथा बन्दूक की बटों से बेरहमी से पीटा जिसमें तीस मजदूर बुरी तरह घायल हुए। रामपुरा शहर के पास के दो गांवों--भैणी तथा भाईरूपा में भी यही किस्सा दोहराया गया। पुलिस ने रामपुरा तथा आसपास के गांवों से करीब 1250 मजदूरों को रेलवे स्टेशन पर इकट्ठा किया। इन मजदूरों को जबरन बिना टिकट गाड़ी में ठूंसकर 'अपने देश' भेज दिया गया। इस घटना से दहशतजदा हजारों मजदूर अगले ही दिन शहर छोड़कर चले गये।

ऐसी ही एक घटना फरीदकोट शहर में हुई। जहां पर पुलिस ने प्रवासी मजदूरों की एक बस्ती—कपूर बस्ती को घेर लिया। चार सौ मजदूरों को बेरहमी से पीटा गया। पीटने का कारण यह बताया गया कि इनमें से कुछ मजदूरों पर किसी अपराध में शामिल होने का संदेह था। यह तो सिर्फ एक बहाना था, मगर निशाना कुछ और ही था। अगले ही दिन पंजाब राज्य बिजली बोर्ड के अधिकारियों ने इस बस्ती की बिजली सप्लाई बन्द कर दी।

तीसरी घटना, लुधियाना शहर की है। लुधियाना में ताजपुर रोड पर डेयरी काम्पलेक्स है। यहां पर हजारों प्रवासी मजदूर बहुत ही कम मजदूरी पर काम कर रहे हैं और अमानवीय परिस्थितियों में जीवन बिता रहे है। एक दिन प्रवासी मजदूरों की यहां के डेयरी मालिकों से मामूली सी तकरार हो गई। इसी पर शाम को डेयरी मालिक और उनके गुंडे इन 'भइयों' को सबक सिखलाने आ धमके। पूरी तरह हथियारबंद इन लोगों के सामने जो भी मजदूर आया, उसे बुरी तरह से पीटा गया।

प्रवासी मजदूरों पर हमले की इस तरह की घटनाओं की फेहरिस्त बहुत लम्बी है। बिहार, उ.प्र. तथा अन्य राज्यों के ये मजदूर गरीबी, भुखमरी से तंग आकर पंजाब तथा ऐसे अन्य राज्यों में आते हैं। 'बेगानी' धरती पर यह मजदूर खुद को असुरक्षित, अकेला तथा हीन महसूस करते हैं। इसी वजह से उनके प्रतिरोध करने की शक्ति भी कम होती है जिसके चलते उन्हें भयानक शोषण तथा जोरो-जुल्म का सामना करना पड़ता है।

आज पूंजीवादी व्यवस्था मेहनतकश अवाम को अपनी जगह-जमीन से उजाड़कर सड़कों पर धकेल रही है। सिर्फ बिहार, उत्तर प्रदेश या अन्य राज्यों के पिछड़े क्षेत्रों से ही लोग नहीं उजड़ रहे हैं बल्कि पंजाब जैसी जगहों से रोजगार की तलाश में लोग प्रदेश और देश की सीमाओं को लांघकर भटक रहे हैं। आज यह एक विश्वव्यापी परिघटना है। इस नजरिये से देखें तो पंजाबी मेहनतकशों की प्रवासी मजदूरों से एक अटूट एकता बननी जरूरी है। उन्हें अपनी एकता को व्यापक करना होगा और इंसानियत को तबाह करने वाले पूंजीवादी निजाम को उखाड़ फेंकना होगा। पंजाब की क्रान्तिकारी शक्तियों के ऊपर आज यह अहम जिम्मेदारी है कि वे इन प्रवासी मजदूरों के बीच अपने आधार विकसित करें। क्रान्तिकारी प्रचार के जरिये तथा उनके छोटे-बड़े संघर्षों की अगुआई कर उन्हें डर, भय तथा हीन भावना से मुक्त करें। पंजाबी तथा प्रवासी मजदूरों की फौलादी एकता के निर्माण में आगे आयें ताकि चौतरफा शोषण-दमन का डटकर मुकाबला किया जा सके।

●

"स्वैच्छिक" अर्थात "जबरिया"

उदारीकरण के वर्तमान दौर का एक बहुप्रचलित शब्द है—'स्वैच्छिक अवकाश योजना' (वी.आर.एस.)। जहां देखिए, "स्वेच्छा" से नौकरी छोड़ देने के लिए "जबर्दस्ती" की योजना लागू हो जा रही है। अभी-अभी बैंकों में सरकारी भागीदारी कम करने (यानी निजीकरण का रास्ता खोलने) के निर्णय के साथ ही वी.आर.एस. की भी घोषणा कर दी गयी। अब सरकारी कर्मचारियों के लिए भी इसे लागू किया जाने वाला है। यह योजना कितनी स्वैच्छिक है और कितनी जबरिया, इसके लिए एक उदाहरण काफी है :

विगत 2 नवम्बर को केन्द्रीय मंत्रिमंडल ने देशी-विदेशी लूट की कुछ अन्य योजनाओं पर मुहर लगाने के साथ ही सोना खदानों के भविष्य का भी फैसला कर दिया। मंत्रिमंडल ने यहां कार्यरत मजदूरों/ कर्मचारियों के लिए 'स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति' के संशोधित पैकेज को भी मंजूरी दी। इसे 'स्वैच्छिक अलगाव योजना' के (वी.एस.एस.) का नाम दिया गया। इसके लिए एक माह की समय-सीमा निर्धारित हुई। पैकेज में साफ तौर पर लिख दिया गया है कि जो कर्मचारी इस "आकर्षक योजना" का "लाभ" निर्धारित समय-सीमा में नहीं उठा लेगा उसकी नौकरी अपनेआप समाप्त हो जायेगी। नौकरी छीनने की इसी जबरिया कार्रवाई का सरकारी नाम है—स्वैच्छिक अवकाश योजना।

उत्तरांचल राज्य का गठन : सिर मुड़ाते ही ओले पड़े

बिगुल प्रतिनिधि

उहापोह, शोर-शराबे और गरीबी-बेकारी के घड़ियाली आंसू के बीच नये उत्तरांचल राज्य का गठन हुआ। जनता ने खुशहाली के सपने संजोये, नौकरी मिलने की उम्मीद पालीं और सरकार ने आते ही ठेंगा दिखा दिया।

पिछले पांच नवम्बर को उत्तरांचल के नये सचिव राकेश शर्मा ने एक पत्रकार वार्ता में बताया कि सफाई-सुरक्षा आदि कार्यों में सरकारी भर्ती नहीं होगी बल्कि ठेके पर काम कराया जायेगा। इसी सन्दर्भ में सचिव महोदय ने घोषणा की कि राज्य के सचिवालय में सुरक्षा, बागवानी, सफाई, टेलीफोन सेवा आदि विभिन्न कार्यों के लिए कोई सरकारी कर्मचारी तैनात नहीं किया जायेगा। इन कामों को टेण्डर के आधार पर (यानी ठेके पर) निजी क्षेत्र से करवाया जायेगा।

दरअसल, भूमण्डलीकरण के इस दौर में निजीकरण-छंटनी-तालाबंदी की जो आंधी चल रही है उसमें देश या किसी भी राज्य की सरकार से नौकरी मिलने की उम्मीद पालना ही बेमानी होगा। 'रोजगार विहीन विकास' के इस दौर में रोजगार के सिमटते अवसरों का अंदाज इसी बात से लगाया जा सकता है कि संगठित क्षेत्र में 1991 में रोजगार वृद्धि की जो वार्षिक दर 1.44 प्रतिशत थी वह 1997 तक घटकर 1.09 प्रतिशत रह गयी थी और इस वक्त 1 प्रतिशत से भी कम हो गयी है। इसी प्रकार सार्वजनिक क्षेत्र में 1991 में रोजगार वृद्धि की वार्षिक दर 1.52 प्रतिशत थी जो 1997 में घटकर यह महज 0.67 प्रतिशत रह गयी थी और अब शून्य प्रतिशत के नजदीक पहुंचने वाली है।

एक सरकारी आंकड़े के अनुसार अविभाजित उत्तर प्रदेश में विगत चार वर्षों के दौरान महज निजी सेक्टर में 7 लाख लोगों की नौकरियां छीनी जा चुकी हैं। प्रदेश सरकार 'पंचायती राज' के नाम पर 88,000 खाली पदों को खारिज कर चुकी थी और दो लाख नौकरियों को खत्म करने की योजना बना चुकी थी। ऐसे हालात में नये उत्तरांचल के लोगों को रोजगार मिलने की उम्मीद भी भला क्यों हो? राज्य के सचिव की उपरोक्त घोषणा तो इसी कड़ी का हिस्सा है। जनता को खतरे की इस घण्टी को पहचान कर चेत जाना होगा।

●

बाजार व्यवस्था का घनचक्कर

जनता से लूट, लुटेरों को खैरात

विश्व बाजार में जो गेहूं (उत्तम कोटि का) भारत सरकार सिर्फ 89 डालर (लगभग चार हजार रुपये) प्रति टन बेचने जा रही है, वही गेहूं आस्ट्रेलिया 156 डालर (लगभग सात हजार रुपये) प्रति टन बेच रहा है। यही नहीं इससे खराब गेहूं (लाल) अमेरिका 135 डालर (लगभग छह हजार रुपये प्रति टन की दर से पहले से ही बेच रहा है। इतना सस्ता गेहूं विदेश भेजने के पीछे सरकार का तर्क है कि भारी मात्रा में गेहूं के भण्डारण में सरकार को 2200 रुपये प्रति टन वार्षिक का अतिरिक्त बोझ पड़ता है, लिहाजा वह स्टाक खाली करना चाहती है।

एक तरफ तो सरकार देश में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाली आबादी को मिलने वाले गेहूं की कीमत में 80 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी कर देती है और दूसरी तरफ अन्तरराष्ट्रीय बाजार में सस्ती दर पर गेहूं बेचती है। यदि गेहूं का भण्डारण अधिक है तो सरकार विश्व बाजार की जगह अपने देश की जनता को ही इतने सस्ती दर पर गेहूं उपलब्ध क्यों नहीं कराती?

यही तो बाजार व्यवस्था और पूंजीवादी अर्थव्यवस्था घनचक्कर है। विश्व बाजार में देश का गेहूं बिकेगा तो डालर मिलेगा। देश का विदेशी मुद्रा भण्डार बढ़ेगा। गरीबों को सस्ती दरों पर गेहूं बेचने से भला "देश की तरक्की" कैसे होगी?

●

गजरौला के मजदूर संघर्ष

(पेज 3 से आगे)

मिलता है। बहुराष्ट्रीय कम्पनी का कारखाना होने के बावजूद मजदूरों को सुविधाओं के नाम पर कुछ नहीं मिलता है। क्षेत्र के अन्य कारखानों की तरह यहां भी मजदूरों की स्थिति है, जिसे बदलने के लिए शिवालिक के मजदूरों के क्षेत्र के मजदूरों के साथ व्यापक एकता कायम कर आगे बढ़ना होगा।

सी.एन.सी. मेटल्स लि.

सी.एन.सी. मेटल्स लि. की कहानी भी क्षेत्र के अन्य कारखानों से अलग नहीं है। लगभग 50 स्थायी मजदूरों वाला यह छोटा कारखाना मोटर साइकिलों के पुर्जे बनाता है। इसमें अस्थायी ठेकेदारी प्रथा के तहत काम करने वाले मजदूरों की संख्या लगभग 300 है। कारखाने का मालिक स्वयं प्रबन्धकीय काम देखता है।

कारखाने में मजदूरों की एक रजिस्टर्ड यूनियन (सीटू से सम्बद्ध) मौजूद है। लेकिन इसके बावजूद आधे से मजदूरों को न्यूनतम मजदूरी भी नहीं मिलती। स्थायी मजदूर 2000 रुपए से लेकर 3000 रुपए तक वेतन ही पाते हैं, जबकि वे आधुनिकतम तकनोलाजी से उत्पादन करते हैं। ठेका मजदूरों को भी सिर्फ 40-50 रुपए दिहाड़ी मिल पाती है।

लगभग चार महीने पहले मजदूरों ने मालिक को जी.ओ. के अनुसार वेतन देने सम्बन्धी मांगपत्र दिया था, लेकिन मालिक तरह-तरह से आनाकानी करते हुए मजदूरों की इस वाजिब मांग पर कान नहीं दे रहा है। यूनियन के अनुसार वह मन्दी-घाटे का रोना रोते हुए टालमटोल कर मुनाफा पीट रहा है। श्रम विभाग के प्रतिनिधियों के साथ वार्ताओं में भी उसका यही रवैया रहता है।

हाल ही में एक वार्ता के दौरान श्रम विभाग के अधिकारियों ने यूनियन के प्रतिनिधियों को बताया कि मालिक ने जी.ओ. के अनुसार वेतन न देने के लिए कोर्ट से 'स्टे' ले लिया है। मजदूरों ने जब इसका प्रमाण मांगा तो वे टाल गये।

ऐसे में सी.एन.सी. के मजदूरों के सामने भी संघर्ष के सिवा दूसरा कोई चारा नहीं है। कारखाने की मजदूर यूनियन को अब संघर्ष की राह पकड़नी ही होगी। लेकिन, संघर्ष में कामयाबी मिलने की उम्मीद तभी बन सकती है जब यह मांग क्षेत्र के अन्य कारखानों के मजदूरों को साथ लेकर उठायी जाये। सी.एन.सी. के मजदूरों ने ए.एस.पी. के मजदूरों के संघर्ष का साथ देकर इस बात का सबूत भी दिया है कि वे व्यापक मजदूर एकता कायम करने के हामी हैं। यह सबक उन्होंने ए.एस.पी. के मजदूरों के संघर्ष के अनुभव से हासिल किया है। लेकिन, अभी उनके अन्दर कानूनी लड़ाइयों के बारे में कुछ भ्रम मौजूद है। कारखाने के आम मजदूरों को इस भ्रम से उबरना होगा और अपने यूनियन नेतृत्व को संघर्ष के लिए तैयार करना होगा।

●

जनमुक्ति की अमर गाथा : चीनी क्रान्ति की सचित्र कथा (भाग-नौ)

1. 1 अक्टूबर, 1949 के दिन, चीनी सर्वहारा क्रान्ति की जीत के जलसे में शामिल होने के लिए लाखों की तादाद में किसान-मजदूर जनता पीकिङ की सड़कों पर उमड़ पड़ी। ट्रकों में सवार छात्र नारे लगा रहे थे। चारो ओर, दीवारों पर और लोगों के हाथों में माओ के चित्र दीख रहे थे। कुओमिन्ताङ से छीने गये अमेरिकी टैंकों, बख्तरबंद गाड़ियों, फौजी ट्रकों, तोपों और टैंकबेधी हथियारों पर बड़े-बड़े लाल सितारे पेण्ट कर दिये गये थे। तिएन-आन-मेन चौक की एक बालकनी में खड़े होकर माओ ने लाल बैनर और फूल लिये, ढोल-नगाड़ों की थाप पर नाचते लोगों का अभिनन्दन किया। रात होते ही चारो ओर मशालें और बत्तियां जल उठीं। यह सिर्फ चीनी जनता की ही नहीं, बल्कि अक्टूबर क्रान्ति के बाद विश्व सर्वहारा की महानतम जीत थी जो असह्य दुखों, बेमिसाल बहादुराना संघर्षों और अकूत कुर्बानियों के बाद हासिल हुई थी।

चीनी क्रान्ति की विजय ने पूरी दुनिया को झकझोर दिया। एशिया, अफ्रीका और लातिन अमेरिका के देशों में साम्राज्यवादी प्रभुत्व के विरुद्ध लड़ रही किसान-मजदूर जनता नई प्रेरणा से भर उठी। माओ के नेतृत्व में चीनी क्रान्ति ने यह साबित कर दिखाया था कि जनता पर भरोसा करके और सशस्त्र लोकयुद्ध के जरिए साम्राज्यवाद को शिकस्त दी जा सकती थी।

1. चीन लोक गणराज्य की स्थापना की घोषणा करते हुए माओ त्से-तुङ, 1 अक्टूबर, 1949

3. 1951 के कृषि सुधारों के दौरान पुराने जमींदारों द्वारा जारी किये गये जमीन के पट्टों को जलाते हुए चीनी किसान

2. विजयी क्रान्ति का पहला कार्यभार था : राजनीतिक सत्ता के नये रूपों का निर्माण करना। माओ के मार्गदर्शन में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी बिना रुके इस नये, महान ऐतिहासिक काम में जुट गयी। सितम्बर, 1949 में 'नया लोक राजनीतिक परामर्शदाता सम्मेलन' सम्पन्न हो चुका था। यह नये तरह का राजनीतिक संगठन था जो सही मायने में व्यापक आम जनता का प्रतिनिधित्व करता था। इसमें शामिल लोग मोटे-झोटे, फटे-पुराने कपड़े पहने हुए थे। वे भाषण देना नहीं जानते थे पर उत्पादन और जीवन की समस्याओं की ठोस जानकारी रखते थे। पहली बार, वे अपनी नियति का निर्धारण खुद करने बैठे थे।

माओ के उद्घाटन भाषण से बहुतों की आंखों में गर्व के आंसू उमड़ पड़े। माओ ने कहा :

''हमारे राष्ट्र को अब और बेइज्जती और जिल्लतें नहीं झेलनी होंगी। हम उठ खड़े हुए हैं। हमारी क्रान्ति को सभी देशों की जनता की सहानुभूति और समर्थन हासिल है। हमारे दोस्त पूरी दुनिया में हैं... सभी देशी-विदेशी प्रतिक्रियावादियों को हमारे सामने भय से कांपने दो। उन्हें कहने दो कि हम इस या उस काम में अच्छे नहीं हैं। अपने दुर्दमनीय प्रयासों से, हम चीनी लोग अपना अटल लक्ष्य प्राप्त करके ही रहेंगे। लोक युद्ध और क्रान्ति में प्राण न्यौछावर करने वाले जनता के नायक हमारी स्मृतियों में सदा बने रहेंगे।''

3. क्रान्ति के दौरान विकसित हुए जन संगठन बढ़कर सामाजिक जीवन के हर क्षेत्र में फैल गये। करोड़ों लोग किसान संघों, मजदूर यूनियनों, स्त्री संगठनों, युवा संगठनों और पेशेवर बुद्धिजीवी संगठनों में शामिल हो गये। इससे आम जनता को अहम फैसले लेने की ताकत हासिल हो गई और ''जनता की सेवा करने'' की नई ''समाजवादी चेतना'' सर्वव्यापी हो गई। चीन के करोड़ों वंचित लोग कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में चल रही बहसों, विचार-विमर्शों और अध्ययन-समूहों में शामिल होने लगे और नये समाज के निर्माण के लिए जारी उद्यमों में जुट गये।

शहरों में सौ से पांच सौ तक की संख्या में परिवारों को लेकर ''शहरी नागरिक समितियां'' बनाई गईं जो सरकारी नीतियों के बारे में लोगों को बताने के साथ ही आपसी झगड़ों को निपटाने और आपराधिक गतिविधियों से निपटने का काम करती थीं, सफाई तथा आग से सुरक्षा जैसे काम सम्हालती थीं, जरूरतमंद परिवारों के लिए मदद का इंतजाम करती थीं तथा सांस्कृतिक एवं मनोरंजन के कार्यक्रम आयोजित करती थीं।

4. सत्ता के इन लोक निकायों के जरिए चीनी जनता ने पुराने समाज को चमत्कारी ढंग से, जड़मूल सहित बदल डाला :

• साम्राज्यवादियों और चीनी पूंजीपतियों के बड़े घरानों की सम्पत्ति जब्त कर ली गई और उनका मालिकाना राज्य को सौंप दिया गया।

• गांवों में बड़े भूस्वामियों की सम्पत्ति जब्त कर ली गई और उसे गरीब और मध्यम किसानों में बांट दिया गया। किसान संघों ने जालिम जमींदारों की भर्त्सना के लिए मीटिंगें आयोजित कीं और उन्हें सार्वजनिक तौर पर मुकदमे चलाकर दण्डित किया गया। किसान कर्ज, भुखमरी और अत्याचार से मुक्त हो गये।

• चीन के पुराने सामन्ती समाज में औरतें बर्बर उत्पीड़न का शिकार थीं। उन्हें पीटना, खरीदना-बेचना और बलात्कार का शिकार बनाना आम बात थी। नई सत्ता ने उन्हें बराबर नागरिक का कानूनी दर्जा दिया। स्त्रियों को मां-बाप द्वारा तय की जाने वाली शादियों की जगह अपनी मर्जी से शादी करने और तलाक लेने का अधिकार देने के लिए नया विवाह कानून बना। स्त्रियां अब पतियों की घरेलू दासी नहीं रह गईं। वे सभी सामाजिक कामों में भागीदारी करने लगीं और स्कूलों में भी जाने लगीं। बच्चों की हत्या और खरीद-बिक्री पहले आम बात थी। अब उस पर भी कानूनी रोक लगा दी गई।

• पुराने चीनी समाज में अफीम, जुआ और वेश्यावृत्ति आम बात थी जिसने बहुतेरे परिवारों को तबाह कर दिया था। इन समस्याओं को केवल कानूनों द्वारा नहीं, बल्कि जन संगठनों की क्रान्तिकारी चौकसी द्वारा तथा लोगों को सम्मानजनक जीवन जीने का मौका देकर हल किया गया। भूख और गरीबी के चलते छोटे-मोटे अपराध करने वाले लोगों और भिखमंगों को सजा देने के बजाय उन्हें सामाजिक जीवन में फिर से व्यवस्थित किया गया और उत्पादन के कामों से जोड़ा गया। पुरानी सरकार की खुफिया पुलिस से जुड़े कारोबारियों और गिरोहों, बड़े अपराधियों, दलालों, नशे के व्यापारियों को गिरफ्तार करके कठोर दण्ड दिया गया। अफीम के आदी लोगों का इलाज किया गया और उन्हें शिक्षित करके सामाजिक कामों में लगाया गया। भूतपूर्व वेश्याओं को शिक्षा, आवास, स्वास्थ्य सुविधा और नौकरियां दी गईं।

• क्रान्ति के पहले तक चीन के शहरों में जबर्दस्त गरीबी और भुखमरी का आलम था। न भोजन था, न नौकरियां। अपराध और लूटपाट का बोलबाला था। कारखाने बन्द पड़े थे। नई सरकार ने लोगों को काम पर लगाया, देहातों से अनाज पहुंचाने के लिए जन-अभियान संगठित किये, लोगों को आवास मुहैया कराये और सामुदायिक स्वास्थ्य सुविधाओं का ढांचा खड़ा किया। 1953 में सामूहिक टीकाकरण, शहरों की सफाई और प्लेग की रोकथाम के लिए चूहों और मक्खियों के सफाये जैसे जन अभियानों में पन्द्रह करोड़ लोग लगे हुए थे।

• मुक्ति के समय बहुसंख्यक चीनी जनता निपट निरक्षर थी। नई सत्ता ने गांवों, कारखानों और शहरों के गरीब इलाकों में व्यापक जन साक्षरता अभियान संगठित किये।

• 1952 में माओ ने पीली नदी और हुआई नदी पर ''सान कसने'' का आह्वान किया। ईसा पूर्व 246 से ही, हर दो वर्ष बाद हुआई नदी में भयंकर बाढ़ आती थी और करोड़ों किसान तबाह हो जाते थे। नई सत्ता ने जनता को लामबंद करके हजारों साल पुरानी इस समस्या को हल कर लिया। आठ बड़े 'रिजर्वायर' तथा ग्यारह बड़े बांध बनाकर इन दोनों विनाशकारी नदियों पर काबू पा लिया गया, बाढ़ की समस्या से हमेशा के लिए निजात मिल गया और 3 करोड़ 30 लाख एकड़ नई जमीन की सिंचाई होने लगी।

4. जनता द्वारा आयोजित सार्वजनिक अदालत में एक भूस्वामी

5. सार्वजनिक शिक्षा अभियान के दौरान किसानों की पाठशाला

5. चीनी क्रान्ति के ठीक एक वर्ष बाद अमेरिका और संयुक्त राष्ट्र की सेनाओं ने उत्तरी कोरिया पर हमला बोल दिया। साथ ही, ताइवान में भागकर नई प्रतिक्रियावादी हुकूमत कायम किये हुए च्याङ काई-शेक की हिफाजत के लिए भी अमेरिका ने सेना तैनात कर दी।

अमेरिकी सेनाओं ने कोरिया की सीमा पारकर चीन पर हमले का खतरा पैदा कर दिया। तब चीन की नई सत्ता ने लड़ने का फैसला किया। चीनी जनता की स्वयंसेवक सेना ने कोरियाई जन मुक्ति सेना के कंधे से कंधा मिलाकर साम्राज्यवादी हमले के विरुद्ध तीन वर्षों तक जबर्दस्त संघर्ष किया। अमेरिकी सेना 38वीं समान्तर रेखा के पार ढकेल दी गई। कोरिया में एक बार फिर यह सिद्ध हुआ कि यदि जनता अपनी मुक्ति के लिए उठ खड़ी हो तो एक गरीब देश भी बड़ी से बड़ी ताकत को शिकस्त दे सकता है।

चीन की जनता और कम्युनिस्ट पार्टी ने कोरिया युद्ध के दौरान अन्तरराष्ट्रीयतावाद का बेमिसाल उदाहरण पेश किया। कुल सात लाख चीनी स्वयंसेवक युद्ध में शामिल हुए जिनमें से दसियों हजार खेत रहे। इन शहीदों में माओ के पुत्र माओ एन-यिङ भी थे। कोरिया युद्ध में शामिल अधिकांश चीनी स्वयंसेवक औद्योगिक मजदूर थे। नतीजतन, इस युद्ध का चीन के पुनर्निर्माण और उत्पादन पर गम्भीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

6. माओ त्से-तुङ पीली नदी के निरीक्षण दौरे पर, 1952

7. चीन लोक गणराज्य के भूमि सुधार कानून का स्वागत करते किसान

8. कोरियाई युद्ध (1950-53) के दौरान चीनी जन स्वयंसेवक सेना को रसद पहुंचाती कोरियाई जनता

2. 1 अक्टूबर, 1949 को तिएन-आन-मेन द्वार के सामने चीन लोक गणराज्य के स्थापना समारोह की तैयारी

अगले अंक में पढ़िए : चीन में नये-नये प्रयोग और समाजवाद के आगे बढ़ते कदम

विदेशी सलाहकार कम्पनी की रिपोर्ट
सरकारी बीमा उद्योग को ठेठ नफा-नुकसान पर चलाओ!
मोटे असामियों पर नजरें गड़ाओ, आम जनता को लात लगाओ!

• ललित सती

बीमा उद्योग के द्वार देशी-विदेशी पूंजीपतियों के लिए खोल देने के बाद अब सरकारी बीमा कम्पनियों को "सुधारने" का काम शुरू हो गया है। खास तौर पर इसी काम के लिए नियुक्त विदेशी सलाहकार कम्पनी की रिपोर्ट आ चुकी है। आम आदमी भी इस बात को जानता है कि सरकार का सार्वजनिक उपक्रमों को "सुधारने" का क्या मतलब होता है। इसी मतलब को साधने के लिए अपनी सिफारिशों का पुलिंदा तैयार किया है 'बूज एलन एण्ड हेमिल्टन कम्पनी' ने। भारतीय जीवन बीमा निगम के "पुनरुद्धार" के लिए इस कम्पनी ने अब शुद्ध व्यावसायिक दृष्टिकोण अपनाने की सलाह दी है। यहां गौरतलब है कि सामाजिक उत्तरदायित्वों की पूर्ति के नाम पर ही बीमा उद्योग का राष्ट्रीयकरण किया गया था। अब बीमा उद्योग को बाजार की शक्तियों के हवाले कर दिया जायेगा। पूर्व अमेरिकी राजदूत फ्रैंक वाइजनर के शब्दों में कहें तो बीमा उद्योग साम्राज्यवादी वित्तीय पूंजी का "ध्वजपोत" है और इसके प्रवेश करने के साथ ही "पूरा बेड़ा अपनी पूरी ताकत के साथ" प्रविष्ट हो जायेगा।

'बूज एलन एण्ड हेमिल्टन कम्पनी' ने चालीस हजार कर्मचारियों की नये सिरे से तैनाती की सलाह दी है। उसने जोर देकर कहा है कि निगम "बड़े असामियों", जो एक लाख रुपये से अधिक का बीमा कराते हैं, पर अपना ध्यान केन्द्रित करे। इसके लिए उसने कई उपाय सुझाये हैं। उसने कहा है कि एक लाख से अधिक का बीमा कराने वाले ग्राहकों के लिए विशेष शाखाएं खोली जायें। वहां पर चुनिन्दा "काबिल" स्टाफ तैनात किया जाये। मोटे ग्राहकों को विशेष सुविधाएं प्रदान की जायें। यानि, सामाजिक, आर्थिक असुरक्षा के भय से अपनी जरूरतों में कटौती कर बीमा कराने वाली आम जनता को कम्पनी कूड़ा समझती है, जिसे धीरे-धीरे ठिकाने लगा देना है। उसने कहा है कि छोटे-छोटे बीमा कराने वालों के लिए समूह बीमा योजना बनाई जाये। कम बीमा धन वाले ग्राहकों के लिए बोनस का प्रतिशत घटाने का भी उसने सुझाव दिया है।

सलाहकार कम्पनी ने अपनी रिपोर्ट में एशिया व कुछ अन्य देशों के बीमा बाजारों की चर्चा करते हुए कहा है कि बीमा उद्योग के निजीकरण के बाद बाजार का तेजी से विकास हुआ है। उसने इसे समृद्ध अर्थव्यवस्था के संकेत के रूप में दिखाया है। लेकिन रिपोर्ट यह नहीं बताती कि बीमा और अन्य वित्तीय क्षेत्र में विदेशी पूंजी दखल के बाद आज एशियाई, लातिन अमेरिकी मुल्कों के क्या हालात हैं। आखिर अमेरिका, जापान जैसे साम्राज्यवादी देश अपने यहां विदेशी बीमा कम्पनियों को क्यों नहीं टिकने देते? जाहिर है कि वित्तीय पूंजी आज पूरी अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही है और इस पर नियंत्रण की रस्साकशी पूरे विश्व में चल रही है। इसलिए, मुक्त बाजार की जुगाली करते हुए वे तीसरी दुनिया के देशों के बाजार पर तो कब्जा जमा लेना चाहते हैं, लेकिन अपने चिरपरिचित दुरंगेपन और बेहयाई के साथ "संरक्षणवादी" उपायों के सहारे अपने बाजारों में बाहरी घुसपैठ नहीं होने देना चाहते।

विदेशी सलाहकार कम्पनी इस बात का भी जिक्र नहीं करती कि बहुराष्ट्रीय बीमा कम्पनियां बीमाधारकों के साथ कैसी धोखाधड़ियां करती हैं। वह बीमाधारकों के दावों को शातिराना ढंग से खारिज करती हैं। बीमाधारकों का पैसा सट्टाबाजार में लगाती हैं। तमाम बीमा कम्पनियां जो दिवालिया घोषित हो गईं, उनमें बीमा धारकों का पैसा डूब गया। पश्चिमी देशों की बीमा कम्पनियों की स्थिति पर टिप्पणी करते हुए एक बार बी.बी.सी. ने कहा था कि इन देशों में बीमा एजेण्टों को देखते ही लोग "दुरदुराने" लगते हैं। साफ है कि इन देशों में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की साख का दिवाला पिट जाना भी एक अहम वजह है, जिससे वे तीसरी दुनिया में घुसपैठ के लिए बेताब हैं।

'बूज एलन एण्ड हेमिल्टन कम्पनी' की रिपोर्ट पर कार्यवाही करते हुए निगम प्रबन्धन ने अपने कर्मचारियों को प्रशिक्षण देना शुरू कर दिया है। सलाहकार कम्पनी ने कहा है कि कर्मचारियों की संख्या में कटौती जरूरी है। इसके लिए उसने जीवन बीमा निगम के पूरे ढांचे को बदलने के सझाव दिये हैं। क्षेत्रीय एवं मण्डल कार्यालयों में स्टाफ को कम करने की बात कही गई है। शाखा स्तर पर से कर्मचारियों के एक हिस्से को एजेण्ट बनाने का सुझाव दिया गया है। "बढ़िया काम" करने वाले कर्मचारियों को 'हाई एंड ब्रांच' (एक लाख से अधिक बीमाधन के ग्राहकों के लिए शाखा) में तैनात करने की सलाह दी है। इस तरह, एक तरफ तो सलाहकार कम्पनी ने कर्मचारियों में विभेद कर दिया दूसरी तरफ शाखाओं में "वर्ग विभाजन" करके, फालतू कार्यालय घोषित कर तमाम शाखाओं की बन्दी का आधार तैयार कर दिया है। निगम प्रबन्धन सरकार के निजीकरण-उदारीकरण के सुधार कार्यक्रम को आक्रामक तरीके से अमली जामा पहना रहा है।

विडम्बना यह है कि इस पूरे मसले पर कर्मचारी यूनियनें खामोश बैठी हैं। जबकि यह ऐसा मौका था, जिस पर कर्मचारी यूनियनों को आर-पार की लड़ाई छेड़नी चाहिए। एक विचित्र संयोग है कि सुधार कार्यक्रम के पहले चरण में जब जीवन बीमा निगम में व्यापक कम्प्यूटरीकरण हुआ था तो सन 1993 में निगम प्रबन्धन ने कर्मचारियों को एक अतिरिक्त वेतनवृद्धि सहर्ष दे दी थी। आज जब सरकार जीवन बीमा निगम के "सुधार" व "पुनर्गठन" के काम में जुटी है तो इस वर्ष कर्मचारियों का वेतन पुनर्निधारण कर दिया गया; जिसे यूनियनें अपनी ऐतिहासिक जीत के रूप में प्रचारित कर रही हैं। अखिल भारतीय बीमा कर्मचारी संघ (ए.आई.आई.ई.ए) ने तो सन् 74 के वेतन समझौते के बाद अब इस वर्ष के वेतन समझौते पर हस्ताक्षर किये। लगातार एक के बाद एक लड़ाई हारते हुए आखिर ऐसा कौन सा आन्दोलन उठ खड़ा हुआ जिसने मैनेजमेण्ट और सरकार को झुका दिया और कर्मचारियों की "ऐतिहासिक जीत" हो गई? सन् 1993 और 2000 के ये संयोग और पब्लिक सेक्टर के विभिन्न कर्मचारी आन्दोलनों में ट्रेड यूनियन नेताओं का भितरघात और गद्दारी कुछ शंकाओं को जन्म देते हैं।

'बूज एलन एण्ड हेमिल्टन कम्पनी' की रिपोर्ट और सरकार की आर्थिक नीतियों के पोस्टमार्टम से बीमा क्षेत्र में देशी-विदेशी पूंजीपतियों की खुली लूट को समझा जा सकता है। आज बीमा क्षेत्र देशी-विदेशी मुनाफाखोरों के लिए 'हीरामन तोता' बना हुआ है। जाहिर है कि बीमा क्षेत्र के निजीकरण से न सिर्फ कर्मचारियों, छोटे बीमाधारकों के हितों पर कुठाराघात होगा बल्कि इससे भी बड़ा असर यह पड़ेगा कि बीमा निगमों के जरिये जो धन शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन जैसे सामाजिक क्षेत्र में लगाया जाता था; अब उसका बड़ा हिस्सा मुनाफाखोरों की तिजोरियों में जायेगा। साथ ही इस वित्तीय पूंजी की ताकत से वह अपने अन्य हितों को साधेंगे। इसीलिए बीमा क्षेत्र में प्रवेश मिलने से साम्राज्यवादी और देशी पूंजीपति खुश हैं कि अब उनकी लूट का घोड़ा बेलगाम दौड़ेगा।

गैरकानूनी तालाबंदी के बाद टेल्को की लखनऊ इकाई के 250 कर्मचारी बर्खास्त

• ओमप्रकाश

'बिगुल' के पिछले अंकों में हमने टेल्को की लखनऊ इकाई में प्रबंधकों द्वारा की गई गैर कानूनी तालाबंदी के बारे में लिखा था। पिछले 4 सितम्बर को तालाबंदी समाप्त करके कारखाने को फिर से शुरू कर दिया गया। कारखाना शुरू होने पर 1000 कर्मचारियों में से सिर्फ 750 को वापस लिया गया और 250 को नौकरी से निकाल दिया गया।

पिछले 2 वर्षों से अखबारों में कई बार आ चुका है कि आटोमोबाइल उद्योग में मन्दी के कारण टाटा घराना टेल्को कारखाने से 7000 कर्मचारियों की छंटनी करना चाहता है। कानूनी तरीके से वी. आर.एस. (स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना) के तहत छंटनी करने पर कर्मचारियों को काफी मुआवजा देना पड़ता है, इस देनदारी से टाटा जी बचना चाहते थे, इसलिए छंटनी का एक अनूठा फार्मूला निकाला गया।

लम्बे समय से टेल्को की लखनऊ इकाई में कर्मचारियों के वेतन वृद्धि का मामला लम्बित था। इससे कर्मचारियों में काफी असंतोष था और यूनियनें भी प्रबंधकों पर नये समझौते के लिए दबाव डाल रही थीं। प्रबंधकों ने 3 मार्च 2000 को यूनियन नेताओं को बातचीत के लिए बुलाया। इस बीच प्रबन्धकों ने पुलिस-प्रशासन-श्रम आयुक्त एवं सत्ताधारी पार्टी से बातचीत और लेनदेन करके अपनी षडयंत्रपूर्ण योजना को लागू करने की पूरी तैयारी कर ली थी। 3 मार्च को यूनियन के नेताओं के पहुंचने पर उन्हें घंटों कमरे के बाहर जानबूझकर बैठाये रखा गया ताकि कर्मचारियों में बेचैनी पैदा हो। पर्याप्त माहौल बनते ही प्रबंधकों के आदमियों ने आफिस में तोड़फोड़ शुरू कर दी और फिर कमरे में आग लगा दी। पहले से तैयार बैठी पुलिस ने कर्मचारियों पर हमला बोल दिया और उन्हें बर्बरतापूर्वक मारा। सैकड़ों कर्मचारी बुरी तरह घायल हुए। अगले दिन कर्मचारियों के तथाकथित हिंसात्मक रुख को खूब प्रचारित करके कारखाने में तालाबंदी कर दी गई। घायल कर्मचारियों की ओर से पुलिस थाने में कोई एफ. आई.आर. नहीं दर्ज किया गया, उल्टे प्रबन्धकों के झूठे एफ.आई.आर. को दर्ज करके करीब 50 कर्मचारियों को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया। इनके ऊपर हत्या की कोशिश, डकैती, लूटपाट, आगजनी का चार्ज लगाया गया था।

इसके तुरन्त बाद करीब 250 कर्मचारियों को प्रबंधकों ने चार्जशीट दिया, इसमें जेल भेजे गये 50 कर्मचारी भी थे। सबके ऊपर एक जैसा चार्ज लगाया गया था। इन कर्मचारियों को बचाव का कोई मौका दिये बगैर बर्खास्त कर दिया गया। 50 कर्मचारी तो टर्मिनेशन के वक्त जेल में ही थे। हालांकि, भारतीय संविधान की धारा 311 के तहत कर्मचारियों को बचाव का मौका देना अनिवार्य है। लेकिन टाटा जी तो संविधान के ऊपर हैं। इधर कर्मचारियों को निकालने की कार्रवाई चल रही थी, दूसरी ओर कारखाने में तैयार पड़ी मोटरें प्रशासन की मदद से रोज बाजार में बिक रही थीं। जबकि तालाबंदी के समय कारखाने से कोई भी माल निकलकर बाजार में बिकने के लिए जाना गैरकानूनी है।

इधर यह काम हो रहा था, 250 कर्मचारी अपने बचाव की समस्या से निपटने की कोशिश में लगे थे और शेष कर्मचारी भविष्य की आशंका से डरे हुए थे, उधर टाटा का मैनेजमेंट एक दूसरे षडयंत्र में लगा था। वह अपनी एक जेबी यूनियन गठित कर रहा था, साथ ही कोशिश कर रहा था कि पुरानी यूनियन (टेल्को कर्मचारी संघ) का पंजीकरण खत्म हो जाये। इसके लिए अंततः उन्होंने रजिस्ट्रार को तैयार कर लिया और पुरानी यूनियन का पंजीकरण और मान्यता समाप्त कर दी गई। टेल्को वर्कर्स यूनियन के नाम से टाटा जी ने अपनी यूनियन खड़ी कर ली। आनन-फानन में उसका पंजीकरण हो गया। इस नई दलाल यूनियन के लोगों ने फिर कर्मचारियों के घरों पर जाकर, उन्हें डरा-धमका कर एक बांड पेपर पर हस्ताक्षर करवा लिया कि वे नई यूनियन की सदस्यता स्वीकार कर रहे हैं और अपने काम के दौरान वे प्रबन्धकों की हर बात मानेंगे। सारी तैयारी हो जाने पर प्रबंधकों ने इस नई यूनियन से समझौता वार्ता का नाटक किया। कुछ वेतन वृद्धि की गई। साथ ही, यह करार हुआ कि निकाले गये कर्मचारियों के बारे में यह यूनियन कोई बात नहीं करेगी, कारखाने की उत्पादकता बढ़ाने के लिए कार्य वृद्धि को स्वीकार करेगी और हर कर्मचारी प्रबंधकों को एक बांड भरकर देगा कि वह "गुलामी" के लिए तैयार है। समझौता हो गया। 750 कर्मचारी नौकरी पर वापस ले लिए गये और 4 सितम्बर को तालाबंदी समाप्त कर दी गई।

कारखाना खुलने पर निकाले गये कर्मचारियों के लिए सभी रास्ते बंद हो गये। उनकी यूनियन भंग हो गई। उनकी नौकरियां समाप्त हो गईं। पिछले 7 महीने से उन्हें कोई वेतन नहीं मिला है। नये समझौते द्वारा लागू वेतनमान का एरियर (बकाया) तक पाने से उन्हें वंचित कर दिया गया। उनका बोनस भी टाटा जी खा गये। 50 कर्मचारी दफा 307 और 398 के चक्कर में रोज थाने में हाजिरी देने जाते हैं और वकीलों की फीस देते-देते तबाह हो चुके हैं। ये कर्मचारी सभी चुनावी पार्टियों के नेताओं, गवर्नर, मुख्यमंत्री से मिलकर "आश्वासन" भी पा चुके हैं, हाई कोर्ट में केस भी लड़ रहे हैं, श्रम आयुक्त के यहां भी उनका केस लम्बित है, धंधेबाज मजदूर नेता भी इनकी समस्याओं से खेल रहे हैं, लेकिन सब कुछ एक ही जगह ठहरा हुआ है।

थक-हार कर ये कर्मचारी विधान सभा, लखनऊ के सामने 29 सितम्बर से अनिश्चितकालीन भूख हड़ताल पर बैठे हैं, लेकिन सत्ता के गलियारों तक इनकी आवाज नहीं पहुंच पा रही है।

इसी लखनऊ शहर में वर्तमान भारतीय जनता पार्टी की सरकार के गठन के बाद कई कारखाने, कई सरकारी कार्यालय बंद किये गये हैं। 'अपट्रान' बन्द करके करीब 2500 कर्मचारियों को निकाला गया। प्रदेश सरकार के निगमों को बन्द करके हजारों कर्मचारियों को निकाला गया। इससे पहले 'स्कूटर्स इंडिया' की स्कूटर इकाई को बंद करके 1000 लोगों को निकाला गया, 'यू.पी.डी.पी.एल, यू.पी. इंस्ट्रूमेण्ट्स और 'विक्रम काटन मिल' को काफी पहले ही बन्द किया जा चुका था। इनके 5000 कर्मचारी आज भी सड़कों पर भटक रहे हैं। पूरे उत्तर प्रदेश की बात न भी करें तो लखनऊ में ही छंटनीशुदा कर्मचारियों की संख्या 20,000 से अधिक होगी। पूरे उत्तर प्रदेश में तो यह लाखों में होगी। बाजपेई सरकार की घोर मजदूर विरोधी बेशर्म नीतियों से यह संख्या बहुत तेजी से बढ़ती जा रही है, पूरे देश में। फिर भी, मजदूर संघर्षों को उनके अलग-अलग कारखाने-कार्यालयों की लक्ष्मण रेखा के भीतर चुनावी पार्टियों से जुड़े ट्रेड यूनियन नेताओं ने रोक रखा है। अलग-अलग कारखानों में बंटे मजदूरों को एकजुट करने के लिए इस लक्ष्मण रेखा को तोड़ना ही होगा, उन्हें अपनी सीमित आर्थिक मांगों के दायरे को लांघकर राजनीतिक मांगों की मंजिल तक पहुंचना होगा। सिर्फ सही राजनीतिक मांगें ही व्यापक मेहनतकश आबादी को एकजुट कर सकती हैं।

इसे समझना ही होगा कि चुनावी पार्टियों के नेता और सरकार टाटा, बिड़ला और अम्बानी और तमाम पूंजीपतियों के समस्त हितों की रक्षा करने वाली एक मैनेजिंग कमेटी मात्र हैं। जब भी इन पूंजीपतियों को कोई खतरा होता है तो यह मैनेजिंग कमेटी अपनी पूरी मशीनरी, पुलिस, प्रशासन, फौज को आम मेहनतकश आबादी के खिलाफ छोड़ देती है, जैसे कोई मालिक अपने पालतू कुत्ते को दुश्मनों पर छोड़ता है। न्यायपालिका भी इसमें मजदूरों की मददगार नहीं बनती बल्कि मामले को अनंत काल के लिए लटकाकर उनकी सारी ऊर्जा और शक्ति निचोड़ लेती है।

इसका मुकाबला एक ऐसे क्रान्तिकारी संगठन के नेतृत्व में ही किया जा सकता है जिसका लक्ष्य मजदूरों के लिए सिर्फ इकन्नी-दुअन्नी हासिल करना नहीं बल्कि पूंजीपतियों को राज्यसत्ता से हटाकर मजदूरों के राज्य की स्थापना करना हो। जाहिर है कि इस काम के लिए मजदूरों को खुद ही आगे आना होगा। •

एंगेल्स के जन्मदिवस (28 नवम्बर) के अवसर पर

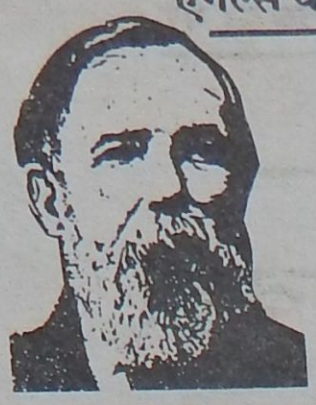

● फ्रेडरिक एंगेल्स

कम्युनिस्ट समाज के बारे में

(एल्बरफील्ड में दिये भाषणों के अंश)

● कम्युनिस्ट समाज में—जिसमें व्यक्तियों के हितों में टकराव नहीं होता, बल्कि वे एक जैसे होते हैं—प्रतियोगिता समाप्त हो जाती है। कहने की जरूरत नहीं कि फिर अलग-अलग वर्गों की तबाही, अथवा आज जैसे धनी और गरीब वर्गों के अस्तित्व का कोई प्रश्न नहीं रह जायेगा। जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन तथा वितरण के क्षेत्र में व्यक्तिगत रूप से हड़प लेने की प्रथा का, प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अपने को धनी बनाने की चेष्टा का जैसे ही अन्त होगा, व्यापारिक संकट खुद-ब-खुद समाप्त हो जायेंगे।

... जुर्मों, खुली हिंसा की हरकतों (आदि) से अपने को बचाने के लिए समाज को प्रशासनिक तथा न्यायिक (कानूनी) संस्थाओं के एक व्यापक, जटिल संगठन की दरकार होती है। इन संस्थाओं में अपरिमित मानव शक्ति लगती है। कम्युनिस्ट समाज में यह व्यवस्था भी अपरिमित रूप से सरल हो जायेगी और, यह चीज सुनने में चाहे जितनी विचित्र लगे, इसका विशिष्ट कारण यह होगा कि उक्त समाज में प्रशासन का काम सामाजिक जीवन के केवल व्यक्तिगत पहलुओं की देखभाल करना नहीं, बल्कि उसकी समस्त अभिव्यंजनाओं तथा उसके समस्त पहलुओं के साथ समाज के सम्पूर्ण जीवन की व्यवस्था करना हो जायेगा। व्यक्ति तथा शेष सबके बीच के अन्तरविरोध को हम नष्ट कर देंगे, सामाजिक युद्ध के स्थान पर सामाजिक शान्ति की स्थापना कर दी जायेगी, जुर्म की "जड़ों" को ही काटकर फेंक दिया जायेगा और, इस प्रकार, प्रशासनिक और न्यायिक संस्थाओं के वर्तमान कार्यों का एक बड़ा, सबसे बड़ा भाग अनावश्यक हो जायेगा।

आज भी हम देखते हैं कि भावावेग के कारण किये गये अपराधों का स्थान सोच-विचार कर, किसी स्वार्थ के लिए किये गये अपराध अधिकाधिक मात्रा में लेते जा रहे हैं; व्यक्ति के खिलाफ किये जाने वाले जुर्म घट रहे हैं, किन्तु सम्पत्ति के खिलाफ किये जाने वाले जुर्मों की संख्या बढ़ती जा रही है। ऐसे समाज में जिसमें प्रत्येक को वे सब चीजें प्राप्त हो जायेंगी जो उसकी शारीरिक तथा आत्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जरूरी है और जिसमें सामाजिक अवरोध और भेद मिट जायेंगे, उसमें सम्पत्ति के विरुद्ध किये जाने वाले जुर्म भी अपने आप समाप्त हो जायेंगे। फौजदारी की अदालत अपने आप मिट जायेगी; दीवानी की अदालत भी, जिसका वास्ता लगभग केवल सम्पत्ति सम्बन्धों, अथवा मूलत: ऐसे सम्बन्धों से होता है जिनकी बुनियाद सामाजिक युद्ध की स्थिति होती है, समाप्त हो जायेगी। मुकदमे जो सार्वत्रिक शत्रुता के परिणामस्वरूप आज भारी संख्या में देखने को मिलते हैं, तब एक अपवाद बन जायेंगे और उन्हें पंच निर्णयों के माध्यम से आसानी से तय कर लिया जा सकेगा। प्रशासनिक संगठनों के काम का आधार आज निरन्तर युद्ध की दशा है—पुलिस तथा सम्पूर्ण प्रशासन को इस वक्त सिर्फ इस बात की फिक्र रहती है कि यह युद्ध छिपा रहे, अप्रत्यक्ष बना रहे। तीव्र होकर खुली हिंसा का अथवा जुर्मों का रूप न ले सके। किन्तु युद्ध को किन्हीं निश्चित सीमाओं में बांधे रखने की अपेक्षा यदि शान्ति को कायम रखना कहीं अधिक आसान है तो एक ऐसे समाज की अपेक्षा जिसमें चारों ओर होड़ मची हो, कम्युनिस्ट समाज के प्रशासन को चलाना भी बेहद आसान होगा। और सभ्यता ने यदि इस वक्त ही लोगों को यह सिखला दिया है कि सार्वजनिक व्यवस्था को कायम रखने, सार्वजनिक सुरक्षा तथा समाज के हितों की हिफाजत करने और इस प्रकार पुलिस, प्रशासन तथा न्यायिक व्यवस्था को अधिक से अधिक मात्रा में अनावश्यक बना देने में ही उनका फायदा है, तो उस समाज में जिसमें सामुदायिक हितों की रक्षा करना ही सबका मूलमंत्र होगा और जिसमें सार्वजनिक हितों और प्रत्येक व्यक्ति के हितों में कोई फर्क बचा नहीं रह जायेगा, लोग इस चीज को कहीं ज्यादा अच्छी तरह समझ जायेंगे।

... हमारे समाज में श्रम शक्ति की बेहद बर्बादी होती है। जिस ढंग से धनी लोग अपनी सामाजिक स्थिति का दुरुपयोग करते हैं उसमें श्रम शक्ति की और भी घटिया ढंग से बर्बादी होती है। सिर्फ दिखावे की भावना के चलते तमाम बेकार की और हास्यास्पद विलासिताओं से जो बर्बादी होती है उसके बारे में मैं कुछ नहीं कहूंगा। लेकिन दोस्तो, जरा किसी भी धनी व्यक्ति के घर में जाकर देखिए और मुझे बताइए कि क्या यह श्रम शक्ति की बिल्कुल निरर्थक बर्बादी नहीं है कि ढेर सारे लोग एक आदमी की सेवा के लिए लगे हुए हैं जिनका ज्यादा समय सिर्फ इन्तजार में या फिर ऐसे कामों में लगता है जो उस व्यक्ति के कमरे में बन्द रहने से पैदा होते हैं। नौकरानियों, बावर्चियों, कोचवानों, घरेलू नौकरों, मालियों, बटलरों और तमाम नामों के ऐसे लोग दरअसल क्या करते हैं? दिन के कितने कम *क्षण* वे अपने मालिक का जीवन वाकई खुशनुमा बनाने में खर्च करते हैं, उसके मानवीय स्वभावों और नैसर्गिक क्षमताओं के मुक्त विकास को सुगम बनाने में खर्च करते हैं और कितने अधिक *घण्टे* ऐसे होते हैं जब वे उन कामों में लगे रहते हैं जो हमारे सामाजिक सम्बन्धों की दुव्यर्वस्था से पैदा होते हैं। जैसे, घोड़ागाड़ी के पीछे खड़े रहना, अपने मालिकों की हर सनक का पालन करना, उनके कुत्तों को गोद में उठाकर चलना और ऐसे ही तमाम दूसरे बेहूदे काम। एक तर्कसंगत ढंग से संगठित समाज में जहां हर कोई इस स्थिति में होगा वह धनिकों की सनक का पालन किये बिना और खुद भी ऐसी सनकों के चक्कर में पड़े बिना जी सकेगा, एक ऐसे समाज में वह श्रमशक्ति सबके और खुद अपने लाभ के लिए लगायी जा सकेगी जो कि फिलहाल विलासिताओं पर बर्बाद होती है।

हमारे समाज में होड़ के चलते भी श्रमशक्ति की भारी बर्बादी होती है क्योंकि यह बड़ी संख्या में ऐसे बेरोजगार-बेघर मजदूरों की जमात पैदा करती है जो खुशी-खुशी काम करना चाहते हैं पर उन्हें काम मिल ही नहीं सकता। चूंकि समाज इस ढंग से व्यवस्थित नहीं है कि वह श्रमशक्ति के वास्तविक उपयोग पर ध्यान दे सके इसलिए हरेक व्यक्ति के ऊपर यह छोड़ दिया जाता है कि वह अपने लाभ का स्रोत तलाश करे। इसलिए यह स्वाभाविक है कि जब भी उपयोगी काम का बंटवारा किया जाता है तो बड़ी संख्या में मजदूर बिना काम के छूट जाते हैं। ऐसा इसलिए और भी होता है कि गलाकाटू होड़ हर एक को मजबूर करती है कि वह अपनी ताकत का ज्यादा से ज्यादा इस्तेमाल करके हर सम्भव मौके का उपयोग इसलिए करे कि सस्ते श्रम को हटा कर और भी सस्ता श्रम लाया जाये (जिसके लिए उन्नत होती सभ्यता पहले से ज्यादा मौके उपलब्ध करा रही है)। दूसरे शब्दों में हरेक को दूसरों को बेकार करने के लिए काम करना होता है। कुछ व्यक्तियों के श्रम को एक या दूसरे तरीकों से हटाने के लिए काम करना होता है। इस तरह हर सभ्य समाज में बड़ी संख्या में ऐसे बेरोजगार लोग होते हैं जो खुशी-खुशी काम कर सकते हैं पर काम पा नहीं सकते और उनकी संख्या उससे कहीं ज्यादा है जितना आमतौर पर माना जाता है। और इसलिए हम पाते हैं कि यह लोग एक या दूसरे तरीकों से खुद की *वेश्यावृत्ति* करते हैं। ये भीख मांगते हैं, सड़कों पर झाड़ू लगाते हैं, तमाम छोटे-छोटे कामों के जरिए किसी तरह बस जी लेते हैं। हर तरह के छोटे-मोटे सामान घूम-घूम कर सड़कों पर बेचते हैं, जैसा कि अभी हमने इसी शाम देखा कि दो गरीब लड़कियां पैसा मांगते हुए गीत गा-गाकर एक से दूसरी जगह घूम रही थीं। उन्हें हर तरह की भद्दी बातें सुननी पड़ रही थीं, हर तरह के अपमानजनक फिकरे बर्दाश्त करने पड़ रहे थे, महज चंद पैसों के लिए। तमाम लोग ऐसे हैं जो वाकई वेश्यावृत्ति के शिकार बन जाते हैं।

सज्जनो, ऐसे बेघर-बेकार लोगों, जिनके पास खुद की एक या दूसरे रूप में वेश्यावृत्ति करने के सिवा कोई रास्ता नहीं है, की संख्या बहुत बड़ी है। हमारे गरीबी निवारण विभाग के अधिकारी आपको इसके बारे में बता सकते हैं। और यह मत भूलिए कि उनके बेकार होने के बावजूद समाज एक या दूसरे रूप में उनका पेट भरता ही है। तब अगर समाज को उनके जीने का खर्च उठाना ही है तो इसे सम्भव बनाया जाना ही चाहिए कि ये बेरोजगार लोग अपनी आजीविका सम्मानपूर्वक अर्जित कर सकें। लेकिन आपसी होड़ पर टिका हुआ यह समाज ऐसा नहीं कर सकता।....

एकताबद्ध क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी के निर्माण की समस्याएं

भारत में क्रान्तिकारी वामपंथी आंदोलन की समस्याएं : एक बहस

पूर्व लेख पर टिप्पणी के रूप में आप के अखबार में एक लेख पढ़ने का मौका मिला, जिसका शीर्षक था "वाम क्रान्तिकारी संगठन का संकट" तथा जिसके लेखक थे कोई पाठक जी। पत्रिका मेरे पास नहीं है इसलिए हो सकता है हूबहू वही शीर्षक मैं नहीं दे पा रहा हूं। लेकिन इससे विचार की मौलिकता में कोई अन्तर नहीं आयेगा। बहस का मुद्दा इतना महत्वपूर्ण है कि लेख की अनुपस्थिति में भी मैं अपनी टिप्पणी दे रहा हूं।

इस लेख का सारांश यह है कि एक संगठन के निर्माण के लिए राजनैतिक एकता अति आवश्यक शर्त है। इस लेख में लेखक पूर्व लेखक के इस विचार से असहमत है कि राज्यसत्ता या भारत के शासक वर्ग के विभिन्न सम्बोधनों (साम्राज्यवाद, पूंजीवाद या सामन्तवाद) के बावजूद एकता बनायी जा सकती है। पूर्व लेखक का लेख तो मैंने नहीं पढ़ा है इसलिए उस लेख को हूबहू मैं स्वीकार करने की हिम्मत नहीं कर सकता। लेकिन एक बात तो अवश्य कहूंगा कि संगठन के मामले में कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी खेमे में अराजकता है। नवजनवादी क्रान्ति तथा समाजवादी क्रान्ति के बीच का विभाजन तो राजनैतिक विभाजन लगता है लेकिन इसे कैसे न्यायोचित ठहराया जाये कि नवजनवादी क्रान्ति तथा समाजवादी क्रान्ति मानने वालों के बीच भी कई संगठन कायम हैं। नवजनवादी क्रान्ति को नक्सलवादी आंदोलन के अधिकतर संगठन स्वीकार करते हैं। ये सभी मानते हैं कि हमारा दुश्मन साम्राज्यवाद, दलाल नौकरशाह पूंजीवाद तथा सामन्तवाद है एवं राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग तक हमारा सहयोगी है। इस मान्यता के बावजूद विभाजन इस बात को लेकर है कि क्रान्ति को आगे बढ़ाने के लिए चुनाव का उपयोग किया जाये या बहिष्कार। चुनाव का उपयोग करने वालों में फिर बहस इस बात पर है कि शासक वर्ग के किसी हिस्से को चुनाव में समर्थन दिया जाये या नहीं। चुनाव बहिष्कार करने वाले पीपुल्स वार तथा एम.सी.सी. में मतभेद है कि 1969 में सी.पी.आई. (एम.एल) पार्टी की स्थापना सही थी या नहीं। एम. सी.सी. एवं कानू सान्याल के बीच सी. पी.आई. (एम.एल.) निर्माण को नकारात्मक मानने में एकता है, लेकिन कार्यपद्धति में जमीन-आसमान का अन्तर है। भारत की भावी क्रान्ति को समाजवादी क्रान्ति के रूप में स्वीकार करने वाले भी कई संगठन है। इसमें कुछ माओ विचारधारा को स्वीकार करते हैं तो कुछ नहीं। एस.यू.सी.आई., आर.एस.पी.आई. (एम.एल.) तथा कई नक्सलबाड़ी धारा से पैदा हुए (एम.एल.) संगठन समाजवादी क्रान्ति ही भारत की क्रान्ति की मंजिल मानते हैं लेकिन अन्य मामलों में कायम मतभेद को वे इतना महत्वपूर्ण मानते हैं कि "आपसी" एकीकरण की बात वे सोचते तक नहीं हैं।

इस बिखराव का नतीजा है कि सारे संगठन सिर्फ नकारात्मक भूमिका अदा कर रहे हैं। ये साम्राज्यवाद, भारत के शासक वर्ग एवं संशोधनवाद पर पत्रिका में बड़े-बड़े लेख लिखते हैं लेकिन साम्राज्यवाद के खिलाफ या नई आर्थिक नीति के दुष्प्रभाव के खिलाफ एक भी बड़ा राजनैतिक आंदोलन खड़ा करने में सक्षम नहीं हो पाते। नई आर्थिक नीति के दुष्परिणाम को मजदूर वर्ग रोज झेल रहा है। लेकिन आंदोलन के सशक्त केन्द्र के अभाव में वह गुस्सा पीकर "शांत" बैठा है। हम लोग देश के कुछ कोने में इक्के-दुक्के संघर्ष का नेतृत्व कर लिये, उसके बाद आत्मश्लाघा में लीन रहते हैं। हमारे इस अराजक दृष्टिकोण का असर एक संगठन बनाने के निर्माण में भी झलकता है तथा संयुक्त मंच के निर्माण में भी। दोनों कार्यभार (एक पार्टी तथा व्यापक मंच निर्माण) एक दूसरे के न विरोधी हैं न वैकल्पिक बल्कि एक परिपूरक हैं। जो एक कार्यभार को पूरा नहीं कर सकता, वह दूसरे प्रकार के कार्यभार को भी पूरा नहीं कर सकता।

सारे गुप/संगठन/पार्टी अपनी वैचारिक श्रेष्ठता का अंहकार लेकर बैठे हैं एवं इच्छा के बावजूद वर्ग संघर्ष से नाता तोड़ रहे हैं। इन विचारों को लेनिन के शब्दों में क्रान्तिकारी लफ्फाजी ही कहा जा सकता है। विचारधारा की पुष्टि समाज में प्रयोग की सफलता है। इस मामले में हमलोग कहां हैं, स्वयं ईमानदारी से अपने को जांच करें।

यह बात भी स्पष्ट है कि मार्क्सवाद की समझ भी हम लोगों की सतही है। अन्यथा राजनीति एवं संगठन के मामले में इतनी अराजकता नहीं रहती। बहस अधिक चलाने की जरूरत है लेकिन बहस चलाने के लिए भी न्यूनतम अनुशासन एवं एकता चाहिए।

एकताबद्ध क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी के निर्माण के बिना क्रान्ति क्या बड़ा राजनैतिक जनआंदोलन भी आज असम्भव है। स्वत:स्फूर्त आंदोलन फूट भी पड़े तो उसको हम सही दिशा देने में असमर्थ हैं। इसलिए यह जरूरी है कि इस सवाल पर खुली बहस की जाये। केवल इसी सवाल पर ही नहीं बल्कि मतभेद के अन्य बिन्दुओं पर भी। अच्छा होगा कि एक ऐसी पत्रिका संयुक्त रूप से प्रकाशित की जाये जिसका लक्ष्य यही हो।

इस वैचारिक संघर्ष में हम सभी लोगों की चेतना भी बढ़ेगी तथा मतभेद भी हल होंगे। दुर्भाग्य यह है कि कुछ व्यक्तियों को छोड़कर एक दूसरे की पत्रिका भी लोग पढ़ते नहीं है। सभी तरह की पत्रिकाओं का उपलब्ध होना एवं उन्हें पढ़ना एक समस्या तो है ही।

-- सियाशरण शर्मा
ग्वाला बस्ती, पो. इन्द्रानगर, टेल्को,
जमशेदपुर, झारखण्ड

स्तालिन के जन्मदिवस (21 दिसम्बर) के अवसर पर

स्तालिन क्या थे— महामानव या भयावह!

• सुरेन्द्र कुमार

"स्तालिन एक ही साथ महामानव और निस्सीम भयावह थे।" ये शब्द प्रसिद्ध सोवियत पत्रकार-साहित्यकार कन्सतान्तिन सिमोनोव के हैं, जो उन्होंने 1979 में "अपनी पीढ़ी के एक मनुष्य की नजरों से" शीर्षक अपनी संस्मरणात्मक पुस्तक (शायद उनकी अन्तिम कृति) में सत्ता के साथ अपने सम्बन्धों को व्यक्त करते हुए अंकित किये थे। उन्होंने कम से कम शब्दों में स्तालिन नाम की पहेली का उत्तर समेटने का प्रयत्न किया था। परन्तु वह इतना जोड़ना भूल गये कि स्तालिन नेतृत्व, विचारधारा, दूरदर्शिता की दृष्टि से महामानव और समाजवाद के हर रंग-रूप के शत्रुओं के लिए निस्सीम भयावह थे।

आज उनकी मृत्यु के 47 वर्ष बाद भी उनके पक्ष और विपक्ष को लेकर सतत प्रवहमान वाद-विवाद के बावजूद उन्हें इतिहास के दृश्य-पटल से हटाना सबके लिए असम्भव है। अक्टूबर क्रान्ति के महाविस्फोट के उपरान्त उलट दिये गये राजतंत्र की छटपटाती शक्तियों का 16 विदेशी साम्राज्यवादी देशों की सेनाओं की छत्रछाया में क्रान्ति का गला पालने में ही घोंटने का प्रयास, लेनिन के शरीर पर जहरभरी गोली चलाया जाना (वामपंथी-समाजवादी क्रान्तिकारी दोरां काप्लान द्वारा, जिनका गढ़ जर्मनी था, हमारे अपने समतावादी-समाजवादी जार्ज फर्नांडीज को समाजवादी इंटरनेशनल से जुड़े इस इतिहास का शायद ज्ञान हो या शायद न हो), लेनिन का देहावसान और फिर पार्टी गुटबंदी और प्रतिक्रान्ति का मुंह बाये खड़ा होना—यह सब स्तालिन को इतिहास से विरासत में मिला था, जिसका स्वरूप 1871 के कम्यून नेताओं को मिली विरासत से सैकड़ों गुना अधिक विकराल था, इसलिए कि कम्यून के नेताओं के पास पाने और खोने के लिए मात्र पेरिस था, पर रूस ने तो क्षेत्रफल, आबादी, क्रान्ति की ज्वाला के व्यापक पैमाने की दृष्टि से पूंजीपति वर्ग के लिए पूरे संसार के सामने जिन्दगी या मौत का असल सवाल खड़ा कर दिया था।

रूस और उसकी नींव पर बने सोवियत संघ को गृहयुद्ध से निपटने पर सांस लेने की फुरसत भी नहीं मिली थी कि उक्रेन अकाल की चपेट में आ गया, मध्य एशिया, काकेशस में कबायली गिरोह, सम्पत्ति से वंचित हो रहे बड़े-बड़े खान, अमीर, बे (बड़े भूपति) आदि-आदि जहां-जहां मौका मिलता था, विपक्षियों को जिंदा रेगिस्तानों में गाड़ देते थे, केवल उनके सिर बाहर रहते थे, खेती की मशीनें चलाने का काम सीखने वालों के हाथ-पैर काट दिये जाते थे। (प्रसंगतः चेचेन्या की राजधानी ग्रोज्नी में इन पंक्तियों के लेखक को 1983 में ऐसी विख्यात वृद्धा चेचेन कवयित्री से मिलने का मौका मिला, जिसके ओंठ किशोरावस्था में इसलिए सिल दिये गये थे कि घर में मर्दों के न होने पर उसने हल जोतने का "मर्दाना" दुस्साहस किया था। यदि मैंने उस वृद्धा के होठों पर टांके के निशान न देखे होते, तो मैं उस लोमहर्षक घटना पर शायद विश्वास न करता।) और जब घरेलू मोर्चे पर स्थिति ठीक-ठाक होनी शुरू हुई ही थी कि पश्चिम ने अपना नया ब्रह्मास्त्र बनाना शुरू किया—नाजीवाद और फासिज्म को उनके विचारधारात्मक शस्त्रास्त्र कारखाने में गढ़ा जाने लगा। किसके विरुद्ध? इसका उत्तर देने की आज कोई आवश्यकता नहीं रह गयी है। जब यह ब्रह्मास्त्र तैयार हो गया और उसे पश्चिम के बजाय पूर्व की ओर लक्षित किया गया, उस समय हैरी ट्रुमन ने, जो रूजवेल्ट के बाद अमरीका के राष्ट्रपति बने, जो कुछ कहा, वह "पूंजीवाद-साम्राज्यवाद-नव-उपनिवेशवाद" के पूरे के पूरे दर्शन को सार रूप में उजागर कर देता है :

"अगर यह नजर आये कि जर्मनी की युद्ध में जीत हो रही है, तो हमें रूस की मदद करनी चाहिए, और अगर रूस की जीत हो रही हो, तो हमें जर्मनी की मदद करनी चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि दोनों पक्ष एक-दूसरे के अधिक से अधिक लोगों को मौत के घाट उतारें।" (न्यूयार्क टाइम्स, 24 जून 1941)।

इसके बाद सोवियत संघ के प्रति पूंजीवाद की पूरी सोच और उसकी अल्पकालिक और दीर्घकालिक रणनीतियों पर कोई विशद टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। केवल इतना स्मरण कराना आवश्यक है कि इस भयावह वातावरण के बीच स्तालिन ने ईंट-ईंट जोड़कर वह भव्य भवन खड़ा किया, जिसे सोवियत समाजवादी जनतंत्र संघ नाम दिया गया, वह पार्टी खड़ी की जिसके निर्देशन में, परामर्श से, मार्ग-दर्शन में मजदूरों और किसानों के पहले, नवजात देश को शत-प्रतिशत साक्षर बनाया गया, उद्योग-कृषि का आत्मनिर्भर ढांचा खड़ा हुआ, और सबसे बड़ी बात—जनता ने नया अपूर्व आत्म-विश्वास प्राप्त किया।

अतः स्तालिन को सोवियत संघ की इन युगान्तरकारी उपलब्धियों के कारण यदि शत्रु-शिविर ने, जिसमें सभी तरह के देशी-विदेशी शक्तियां शामिल थीं, प्रहार का मुख्य निशाना बनाया तो यह स्वाभाविक ही था। स्तालिन ने विश्व-साम्राज्यवाद के षड्यंत्रों को विफल बनाने में कभी किसी से कोई रियायत नहीं बरती। अगर ऐसा करते तो शायद साम्राज्यवाद के सबसे बड़े सोवियत-विरोधी अभियान—द्वितीय विश्वयुद्ध—में कम्युनिज्म की श्रेष्ठता सिद्ध न हो पाती (इस महायुद्ध में पश्चिमी देश नाजियों और फासिस्टों के विरुद्ध मैदान में कब उतरे? जून 1944 में, जब सोवियत सेनाएं शत्रु को रौंदती हुई जर्मनी के द्वार खटखटाने लगी थीं)।

इस युद्ध से बहुत पहले भी, युद्ध के दौरान और युद्ध के बाद से लेकर आज तक स्तालिन का नाम कम्युनिज्म के शत्रुओं के लिए सबसे बड़ा हौआ बना हुआ है। उन्हें दानव के रूप में चित्रित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी गयी। गोर्बाचोव-युग की कम्युनिस्ट पार्टी के सिद्धान्तवेत्ता अलेक्सांद्र याकोव्लेव की तो थीसिस ही है—"स्तालिन और हिटलर को एक-दूसरे की जरूरत थी।" आगे—"1917 की अक्टूबर क्रान्ति महज तख्ता उलटने की एक खूनी कार्रवाई थी, जबकि उसी वर्ष फरवरी माह में बड़े-बड़े सामन्तों और पूंजीपतियों द्वारा जारशाही के स्थान पर बुर्जुआ सरकार की स्थापना जनवादी क्रान्ति थी।" जियोनिस्ट लाबी के इस खुले पश्चिमी आशीर्वाद प्राप्त खेल में कुकुरमुत्तों की तरह उग रही बुद्धिजीवी पीढ़ी का एक पथभ्रष्ट हिस्सा शामिल हो गया था। इसके लिए अलेक्सांद्र सोल्जेनित्सिन को पश्चिम ने नोबल पुरस्कार दिया, भौतिकीवेत्ता आन्द्रेई सखारोव को जनवाद का मसीहा घोषित किया गया, मास्को के एक लगभग अपठनीय रूसी-अंग्रेजी साप्ताहिक **मास्को न्यूज (मस्कोवस्किए नोवोस्ती)** के सम्पादक येगोर याकोव्लेव पीत-पत्रकारिता के पितामह बन गये... आदि। परन्तु सबका एकमात्र लक्ष्य स्तालिन और उनके युग को लांछित कर कम्युनिज्म की विचारधारा को रूस के इतिहास का एक खौफनाक पृष्ठ सिद्ध करना था। क्रेमलिन के सत्ताधारी इस मुहिम के या तो संचालक अथवा सहअपराधी बन गये।

स्तालिन-प्रकरण को लेकर जोसेफ स्तालिन का सबसे प्रामाणिक चरित्र-चित्रण द्वितीय विश्वयुद्ध के अमर सेनानी मार्शल कन्स्तान्तिन जुकोव ने अपनी दो खण्डों की आत्मकथा में किया है, जो इस लेखक की दृष्टि में एक तरह हर्फे-आखिर है।

जुकोव के शब्दों में :

"...मैंने पूछा: "कामरेड स्तालिन, लम्बे अरसे से आपसे एक सवाल पूछने का जी कर रहा था। आपके बेटे याकोव के बारे में। उसके बारे में आपको कोई जानकारी मिली है?"

"स्तालिन ने तुरन्त कोई उत्तर नहीं दिया। हम कोई सौ कदम चले होंगे (भोजन के लिए रसोईघर की ओर) कि स्तालिन ने मंद-धीमे स्वर में कहा : "वे याकोव को छोड़ेंगे नहीं! फासिस्ट उसे गोली से उड़ा देंगे। जो कुछ मालूम हुआ है, उसे दूसरे युद्धबंदियों से अलग रखा जा रहा है और उस पर अपने देश के साथ गद्दारी करने के लिए जोर डाला जा रहा है।"

स्तालिन थोड़ी देर खामोश रहे, फिर दृढ़ स्तर में बोले: "नहीं, याकोव गद्दारी करने के बजाय किसी भी तरह की मौत झेलना पसन्द करेगा।"

जुकोव के शब्द में आगे :

"जाहिर था, स्तालिन अपने बेटे के बारे में बहुत चिन्तित थे। वह भोजन के लिए कुर्सी पर बैठे और देर तक खामोश रहे, उन्होंने सामने रखी रकाबियों को देर तक नहीं छुआ।... फिर मानो अपने मन के भावों को मुखरित करते हुए बहुत ही पीड़ा भरे स्वर में बोले: "कितना भयंकर युद्ध! न जाने हमारे कितने लोगों की बलि ली है इसने! हमारे बीच शायद चंद ही परिवार हों, जिनके किसी न किसी आत्मीय जन को इसने न निगला हो.... पर सिर्फ सोवियत जनता ही, कम्युनिस्ट पार्टी की महान आत्म-शक्ति में तपी-मंजी जनता ही इतने विराट पैमाने की अग्नि-परीक्षाएं और यंत्रणाएं झेल सकती थी..." (**वस्पोमिनानिया इ राजमीश्लेनिया**, "संस्मरण और अनुचिन्तन", मार्शल गि. क. जुकोव, पृ. 339-340, प्रोग्रेस पब्लिशर्स, मास्को, 1985, खण्ड 2)।

मितभाषी स्तालिन अपने याकोव के माध्यम से देश के लाखों-लाख शहीद होने वाले युवक-युवतियों की नियति के बारे में सोच रहे थे। यह था एक ओर अक्टूबर क्रान्ति की सन्तति का, कम्युनिस्ट पार्टी के ध्वजवाहकों का रुख और दूसरी ओर नाजियों तथा पूंजीपतियों के चाटुकारों की मनःस्थिति का प्रतिबिम्ब। इसी प्रसंग में सोवियत अभिलेखागारों से मिले एक दस्तावेज के कुछ अंश, जो मुझे स्मरण है, यहां जोड़ना अप्रासंगिक नहीं होगा।

नाजी हाई कमान मार्शल रैंक के अपने एक युद्धबंदी को छुड़ाने के लिए याकोव को मोहरे के रूप में इस्तेमाल करना चाहता था। स्तालिन को जब इसकी भनक पड़ी, तो उन्होंने कहा: "मेरा बेटा मार्शल नहीं है।" नाजियों की पेशकश ठुकरा दी गयी। (कुछ दिन बाद बंदी शिविर से बच निकलने का प्रयास करते समय याकोव को गोली से उड़ा दिया गया था।)

स्तालिन के विरुद्ध क्रूरता, निरंकुशता, स्वेच्छाचारिता बरतने के कुत्सा प्रचार के सतत अभियान के दौरान उन पर गृहयुद्ध के समय कई लाख लोगों को, और सत्ता संघर्ष में उतने ही प्रतिद्वन्द्वियों को मौत के घाट उतारने का आरोप लगाया जाता रहा है। यदि इसमें पहले विश्वयुद्ध में (1914-18) और द्वितीय विश्वयुद्ध (1941-45) में काल-कवलित रूसियों को शामिल कर लिया जाये, तो रूस की या बाद में सोवियत संघ की आबादी अरबों में होनी चाहिए थी, जबकि पूरे सोवियत काल में यह आबादी 20 करोड़ से सदा कम ही रही, अधिक नहीं। तो करोड़ों-अरबों मारे गये रूसी कहां से आये? इस भयंकर और साथ ही हास्यास्पद आक्षेप के प्रणेताओं के समक्ष गोयबल्स (हिटलर का मिथ्या-प्रचार मंत्री) सरासर बौना प्रतीत होता है। पर एक बात तो सच है। स्तालिन के शत्रुओं ने उनकी जो दैत्य रूपी छवि बनायी थी, उसमें वे सचमुच स्वयं विश्वास करने लग गये थे। अथवा किसी देश का, वह भी उस समय उभर रहे एक सुपर पावर (अमरीका) का रक्षामंत्री लुई आर्थर जानसन—मई 1949 में 16वीं मंजिल से नीचे न कूदा होता। कूदने से पहले उसकी क्या मनोदशा थी? "रूसी आ रहे हैं, कहते हुए वह सड़क पर दौड़ा चला जा रहा था। लोग मार्च 1949 के महीने में उस त्रासदी भरे दृश्य के दर्शक थे। (आर्नल्ड ए. रोगोव, **विक्टिम आफ ड्यूटी** : ए स्टडी आफ जेम्स फारेस्टल, हैट-डेनिस प्रकाशनगृह, लन्दन, 1966, पृ. 228)। उसकी दुर्नियति में स्तालिन की कोई भूमिका न थी। यह बात तो प्रसंगवश कही जा रही है, क्योंकि मुद्दा तो स्तालिन के कथित दमन-चक्र में लाखों लोगों के मारे जाने का है। डेढ़ दशक से ऊपर के अपने सोवियत प्रवास के दौरान मेरी जिज्ञासा का एक विषय यह भी रहा था।

रूस के अनेक नगरों के अलावा आर्मीनिया, जार्जिया, आजरबाइजान, उज्बेकिस्तान, ताजिकिस्तान, कजाखिस्तान आदि जनतंत्रों के गांवों और शहरों में जिस-जिस परिवार का भी मैं अतिथि होता, वहां लोगों से मेरा यही प्रश्न होता था : "स्तालिन के समय तुम्हारे कितने प्रियजन स्तालिनी दमन-चक्र के शिकार हुए?" केवल दो-चार ऐसे मिले, जिनके उच्चपदासीन सम्बन्धियों को मृत्यु दण्ड दिया गया था। —उनका अपराध? **गबन, किसानों को राज्य की नीति के विरुद्ध भड़काना, गृहयुद्ध के समय अफवाहें फैलाना आदि।** अलबत्ता 1917 से 1924 तक लेनिन को लेकर बोल्शेविक सत्ता पर और उसके बाद ख्रुश्चेव के 1956 के व्यक्तिपूजा विषयक भाषण तक स्तालिन पर पश्चिम ने अपरिमित मात्रा में झूठी कहानियां गढ़ीं, इतने मिथक रचे और गढ़े, जिनकी तुलना में संसार के समस्त पुराण-दंतकथाएं फीकी पड़ जाती हैं। परन्तु विडम्बना तो यह है कि रूस की जनता का एक भाग, विशेषकर बुद्धिजीवी वर्ग उस सब पर विश्वास करने लगेगा। पश्चिम से आयी कुप्रचार की बाढ़ को रूसी रंग देकर उसे फिर पश्चिम की ओर मोड़ दिया गया और झूठों की यह दुतरफा प्रक्रिया "सच" बनती चली गयी।

ऐसा न होता तो 1991 में क्या मास्को का दैनिक **कम्सोमोल्सकाया प्राव्दा** यह लिखता कि "स्तालिन जार का जासूस था जिसे अक्टूबर क्रान्ति के समय साइबेरिया से पेत्रोग्राद (आज का सेंट पीटर्सबर्ग) पहुंचने में जार सरकार ने मदद दी थी"? रूसी पत्र की यह रिपोर्ट उसकी सनसनीखेज खोज नहीं थी, अमरीकी जासूसी विभाग वर्षों पहले उसे अपने मीडिया के माध्यम से प्रचारित कर चुका था। कहा गया कि स्तालिन द्वितीय महायुद्ध के आरम्भ से पहले रूस का आत्म-समर्पण कराने की योजना बना रहे थे (**न्यू टाइम्स**, मास्को, अंक 13, 1992)। दो सप्ताह बाद उसी पत्रिका को तत्कालीन घटनाओं के प्रत्यक्षदर्शी जनरल **पावेल सुदोप्लातोव** का लेख छापना पड़ा, जिसमें उक्त घिनौने आरोप का सप्रमाण खण्डन किया गया था (वही, अंक 5, 1992)। फेहरिस्त तो बहुत लम्बी है.... पर केवल इतना सच है कि स्तालिन अपने शत्रु को बख्शना नहीं जानते थे।

विन्स्टन चर्चिल ने अमरीका में शीत-युद्ध का पहला गोला 5 मार्च 1946 को दागा, जिसमें उन्होंने सोवियत संघ की ओर से "ईसाई सभ्यता के लिए उत्पन्न खतरे" का नारा घोषित किया था। **"क्रेमलिन की कुर्सियों में बैठे वे 14 लोग" फिकरा चर्चिल की उसी दिन की देन थी।**

"चर्चिल और अमरीका तथा इंग्लैण्ड में उनके दोस्त अंग्रेजी भाषा से अनभिज्ञ राष्ट्र-जातियों के मामले में कुछ ऐसा कर रहे हैं, जो अल्टीमेटम से मिलता जुलता है : हमारी श्रेष्ठता स्वेच्छया स्वीकार करो तो सब ठीक रहेगा अन्यथा युद्ध अवश्यम्भावी है... मैं कह नहीं सकता कि चर्चिल और उनके दोस्त द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त "पूर्वी यूरोप के विरुद्ध नया अभियान संगठित करने में सफल होंगे या नहीं। लेकिन वे अगर

(पेज 11 पर जारी)

लेखक 1946 के ऐतिहासिक नौसेना विद्रोह में शामिल रहे थे। अंग्रेज हुकूमत के खिलाफ इस बगावत में शामिल लोगों को आजाद भारत में भी मुजरिम माना गया और दुबारा नौसेना में नहीं लिया गया। कई दशकों तक लेखन और पत्रकारिता से जुड़े रहे श्री सुरेन्द्र कुमार 1972 से लेकर 1989 तक सोवियत संघ में रहे जहां उन्होंने प्रगति प्रकाशन के लिए मार्क्सवाद की दर्जनों किताबों का हिन्दी में अनुवाद किया। उन्होने समाजवाद की पितृभूमि में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के बाद हुए चौतरफा पतन को अपने सामने देखा है। --सं.

(पेज 10 से आगे)

कामयाब होते हैं, तो वे उसी तरह परास्त किये जायेंगे, जिस तरह 25 वर्ष पूर्व किये गये थे।''--स्तालिन। (स्तालिन का संकेत 1917 की अक्टूबर क्रान्ति का विस्फोट होने पर विश्व के चौदह साम्राज्यवादी-उपनिवेशवादी देशों की सशस्त्र सेनाओं के रूस पर संयुक्त धावे की ओर था, जिसकी परिणति उनकी लज्जाजनक पराजय में हुई थी)।

स्तालिन नपे-तुले शब्दों में लाखों-करोड़ों की भावनाओं को व्यक्त करने में बेजोड़ थे। ''हरामजादा। कर ही बैठा आखिर वह। अफसोस कि वह जिंदा नहीं पकड़ा जा सका।'' यह स्तालिन ने मार्शल जुकोव से तब कहा, जब उन्हें 30 अप्रैल (1945) की रात खत्म होने पर बर्लिन में हिटलर की आत्महत्या की खबर सुनायी गयी। इतने कम शब्दों में महायुद्ध के खलनायक के कायरताभरे अन्त का समाहार और किसी तरह हो ही नहीं सकता था।

स्तालिन इतिहास-पुरुष थे, इस पर उनके शत्रुओं और मित्रों की भिन्न राय नहीं हो सकती। परन्तु इस प्रसंग में ''धीरे बहे दोन रे'' महाउपन्यास के रचयिता मिखाइल शोलोखोव का परामर्श सबके लिए, विशेष रूप से पूरे प्रबुद्ध जगत के लिए अत्यन्त समीचीन है।

उन्होंने कहा : ''स्तालिन का कद घटाकर पेश करना, उन्हें मूर्ख की तरह दर्शाना गलत है। **पहली बात, यह बेईमानी है, और दूसरी बात, यह देश के लिए, सोवियत जनता के लिए बुरा है। इसलिए नहीं कि विजेताओं को नापा-तोला नहीं जाता, बल्कि सबसे बढ़कर इसलिए कि ऐसे दोषारोपण सच्चाई के उलट हैं,''** (फासिज्म पर विजय की 25वीं जयन्ती पर, 9मई 1970 को, **कोम्सोमोल-स्काया प्राव्दा** में प्रकाशित भेंट वार्ता)। अमर साहित्यकार की चेतावनी यदि सुन ली गयी होती तो शायद कुछ लोग पूरे घर को अपने ही घर के चिराग से न जला पाते।

पिछले वर्ष पश्चिम के किसी बुर्जुआ अर्थशास्त्री ने बहुत मन मारकर कहा था—21वीं शताब्दी शायद फिर कार्ल मार्क्स की शताब्दी होगी। अगर ऐसा हुआ तो उनके साथ एंगेल्स, लेनिन, स्तालिन, माओ और हो चि-मिन्ह का नक्षत्रमण्डल भी फिर सबको दिखायी देने लगेगा। खैर, यह तो पूर्वानुमानों का विषय है, जो बहुधा सिद्धान्ताधारित नहीं हुआ करता परन्तु इस संदर्भ में मुझे स्तालिन की भूमि जार्जिया की याद हो आती है। आठवें या नौवें दशक में मैं अपने एक मित्र के साथ जार्जिया की राजधानी त्बिलिसी की एक पहाड़ी की चोटी पर ''रोपवे'' से पहुंचा। वहां एक विशाल खाली चबूतरा था। मेरी प्रश्नवाचक दृष्टि को भांपते हुए वहां सैर के लिए आया एक स्थानीय निवासी, जो युवक ही था, मुझसे बोला : ''यहां हमारे नेता की बहुत ऊंची मूर्ति थी, जिसे नीचे शहर के किसी भी कोने से देखा जा सकता था। 'भाई लोगों ने' (उसके शब्दों का व्यंग्य स्पष्ट था) उसे हटा दिया और शायद किसी संग्रहालय में पहुंचा दिया।

''परन्तु यकीन रखें, वह फिर यहां लौटेगी'', यह कहते हुए वह आगे बढ़ गया। मैं सोच रहा था, इतिहास की तेज लहरें आयी और बहुत कुछ बहा ले गयीं। अगली लहरें आयेंगी तो आज के तलछट को बहा ले जायेंगी और इतिहास की पवित्र-पावन मूर्तियां फिर से प्रतिष्ठापित हो जायेंगी। कब और कैसे—इसका उत्तर भी इतिहास ही देगा।

पर्यावरण के नाम पर 25 लाख से भी अधिक मजदूरों की रोजी छीन रही है सरकार

(पेज 1 से आगे)

प्लाण्ट स्थापित करने थे, उस दिशा में उसने कुछ नहीं किया।

यहां हमें एक बार फिर तीन वर्षों पुरानी उस घटना की याद को ताजा कर लेना होगा जब सुप्रीम कोर्ट ने ''हानिकारक और जहरीली'' श्रेणी के 168 उद्योगों को बन्द करने या दिल्ली से बाहर ले जाने का आदेश दिया था, जिसपर 30 नवम्बर '1996 को अमल भी हो गया और 50,000 मजदूर बेकार हो गये। सुप्रीम कोर्ट के आदेश के बावजूद कुछ मजदूरों को छोड़कर अधिकांश को न काम मिला न ही मुआवजा। सवाल यह है कि सुप्रीम कोर्ट मजदूरों को काम या मुआवजे के अपने आदेश पर सरकार या पूंजीपतियों से अमल क्यों नहीं करा पाया?

इस बार भी आड़ पर्यावरण को सुधारने का ही लिया गया है। फर्क सिर्फ यह है कि इस बार बन्दी के शिकार होने वाले लघु उद्योगों के मालिक ऐसा नहीं चाहते हैं बल्कि देशी-विदेशी बड़ी पूंजी के मालिक ऐसा चाहते हैं। जहां तक मजदूरों का सवाल है तो उनके लिए पहले और अब की स्थिति में यह फर्क है कि 1996 में 50,000 मजदूर बेकार हुए थे और इस बार 25 लाख से भी अधिक मजदूर बेकार होने वाले हैं।

यहां हम एक बार फिर उन बातों को दोहरा देना जरूरी समझते हैं जो हमने पिछले साल इस मुद्दे पर 'बिगुल' के लेख में कही थीं।

यह अनायास नहीं है कि दिल्ली में लाखों लघु उद्योगों की बन्दी का यह फैसला तब आया है जब भाजपा सरकार ने ''उदारीकरण के दूसरे दौर'' की गाड़ी को ढलान पर सरपट दौड़ा दिया है। भूमण्डलीकरण के वर्तमान दौर में किसी न किसी तरह से छोटी पूंजी की तबाही और इजारेदार पूंजी का विस्तार होना ही है। यह प्रक्रिया आज अनेकों रूपों में जारी है—कहीं सीधे-सीधे पूंजी की ताकत के बूते तो कहीं पर्यावरण-प्रेम या कोई और आड़ लेकर। जाहिरा तौर पर, इसकी कीमत अंततोगत्वा करोड़ों मेहनतकशों को ही बेकार होकर चुकानी है। इस प्रश्न पर अपनी लड़ाई को सही दिशा में सही ढंग से संगठित करने और आगे बढ़ाने के लिए यह जरूरी है कि मजदूर वर्ग इस बात को समझे कि दिल्ली में जो हो रहा है वह देश के अन्य हिस्सों में भी हो रहा है और यह उदारीकरण- कुचक्र का ही एक हिस्सा है। ऐसा आज हो क्यों हो रहा है, यह जानना भी जरूरी है।

1947 में सत्ता हासिल करने के बाद के लगभग 30-35 वर्षों तक भारतीय पूंजीपति वर्ग ने साम्राज्यवाद से गांठ जोड़े रहकर उसके आर्थिक हितों की हिफाजत करते हुए भी पूरी तरह उसके आगे घुटने टेककर नवउपनिवेशों जैसी स्थिति में पहुंच जाने से बचने के लिए तथा अपने औद्योगिक-वित्तीय आधार को मजबूत बनाने के लिए कुछ निश्चित नीतियों पर अमल किया (1) उन्होंने विदेशी पूंजी के अत्यधिक दबाव से बचने के लिए जनता की गाढ़ी कमाई से ''समाजवाद'' के नाम पर वसूली करके 'पब्लिक सेक्टर' के उद्योग खड़े किये (2)विदेशी दबाव से बचने के लिए समाजवादी देशों की मदद और साम्राज्यवादियों के बीच की होड़ का लाभ उठाया (3) चूंकि देशी एकाधिकारी पूंजीपतियों के पास हर सेक्टर में लगाने लायक पूंजी नहीं थी, इसलिए तमाम सेक्टरों में छोटे और मंझोले कारखानेदारों को प्रोत्साहित किया गया।

लगभग 1980 तक आते-आते हालात बदले। देशी बड़े पूंजीपति अपनी ताकत बढ़ा चुके थे और अब पब्लिक सेक्टर को हड़पने के लिए तैयार थे। उनके पास निवेश के लिए पर्याप्त पूंजी थी और वे उन क्षेत्रों पर भी एकाधिकार चाहने लगे थे जो या तो अबतक छोटे और मंझोले उद्योगों के लिए आरक्षित थे या बेहतर लाभ के अवसर मौजूद होने के चलते बड़े पूंजीपति अबतक जिन क्षेत्रों में दिलचस्पी नहीं ले रहे थे।

उधर दुनिया के हालात भी बदले। पश्चिमी देशों ने लम्बी मंदी से उबरने के लिए पूंजी की अधिकता के संकट को हल करने के लिए गरीब देशों के शासक पूंजीपतियों पर पूंजी-निवेश का रास्ता खोलने के लिए दबाव बढ़ा दिया और विश्व बाजार का स्वामी होने के चलते उन्होंने 'ब्लैकमेलिंग' व दबाव का भी भरपूर सहारा लिया। सोवियत संघ के पतन के बाद स्थितियां पश्चिमी देशों के पक्ष में और अधिक हो गईं। इधर तीसरी दुनिया के देशों के पूंजीपतियों की यह अपनी भी मजबूरी थी कि उन्नत तकनोलाजी और पूंजी के लिए वे साम्राज्यवादी पूंजी के साथ जूनियर पार्टनर के रूप में समझौते करें ओर उनके प्रवेश के रास्ते की सभी बाधाओं को हटा दें। यह उनकी जरूरत भी है और मजबूरी भी। और यही प्रक्रिया उदारीकरण-निजीकरण के दौर में आज जारी है।

जहां तक हमारे देश के छोटे और मंझोले कारखानेदारों की बात है, इनका चरित्र पुराने उपनिवेशों के उन राष्ट्रीय पूंजीपतियों जैसा कत्तई नहीं है जो अपने वर्गीय हितों की खातिर साम्राज्यवाद के विरुद्ध, दुलमुलपन के बावजूद, खड़े हुए थे और राष्ट्रीय मुक्ति-संघर्षों के भागीदार बने थे। सच यह है कि भारत के छोटे-मंझोले कारखानेदार (उन छोटे उद्यमियों को छोड़कर जो कि पांच-दस मजदूर रखकर उनके साथ खुद भी काम करते हैं) साम्राज्यवादी पूंजी के साथ सहयोग और उसकी ताबेदारी के लिए प्राय: बड़े पूंजीपतियों से भी अधिक आतुर रहे हैं। प्राय: इनके उद्यम देशी-विदेशी बड़े पूंजीपतियों के कारखानों के लिए ही कुछ कल-पुर्जे या सामग्री उत्पादित करते हैं या फिर निर्यात के लिए कुछ माल तैयार करते रहे हैं।

मजदूरों के प्रति इनका रवैया सबसे नंगा दमनकारी होता है। पिछड़ी तकनोलाजी के चलते यह मजदूरों की श्रम शक्ति को सस्ती से सस्ती दरों पर निचोड़कर ही बाजार में सस्ती कीमत पर अपना माल बेच सकते हैं और इसके लिए वे मजदूरों के साथ राक्षसी व्यवहार करते हैं। लगभग सारा काम ये दिहाड़ी और ठेका मजदूरों से कराते हैं जिनसे 30-40 रुपये मजदूरी में दस-बारह घण्टे नारकीय स्थितियों में काम लिया जाता है और कोई सुविधा नहीं दी जाती।

अब नये-नये क्षेत्रों में पूंजी लगाने के लिए बदहवासी से होड़ में लगे देशी बड़े पूंजीपतियों की और विदेशी पूंजीपतियों की निगाह भी उत्पादन के उन क्षेत्रों पर है जिनपर फिलहाल छोटे और मंझोले पूंजीपति काबिज हैं। इसीलिए अब सरकार लघु उद्योगों के लिए आरक्षित क्षेत्रों को धीरे-धीरे खुला कर रही है और एकाधिकारी पूंजी को मौका दे रही है कि वह पूंजी की ताकत और उन्नत तकनोलाजी के सहारे छोटी पूंजी को निगल जाये। यूं तो बड़ी मछली द्वारा छोटी मछलियों को निगल लिया जाना साम्राज्यवाद की सदी का आम सार्वभौमिक नियम रहा है। पर अब उसी नियम पर खुले अमल की एक बानगी हमें अपने देश में देखने को मिल रही है।

दिल्ली में पर्यावरण-सुधार के नाम पर 1 लाख 37 हजार लघु उद्योगों को बंद करने का जो कुचक्र सुप्रीम कोर्ट के फैसले की आड़ लेकर रचा जा रहा है, वह भी वास्तव में एकाधिकारीकरण की ही प्रक्रिया है जो हुकूमत की मदद से आगे बढ़ाई जा रही है।

सर्वहारा वर्ग की हमदर्दी जाहिरा तौर पर उन मालिकों के साथ नहीं हो सकती जो उन्हें जानवरों और दासों की तरह खटाते हैं तथा नारकीय स्थितियों में और रोज रोजगार की असुरक्षा की आशंका में जीने के लिए मजबूर करते हैं।

लेकिन इन छोटे उद्योगों को बंद करने से 25 लाख से भी अधिक जो मजदूर आबादी बेकार हो जायेगी उसके सामने खड़ा हो जाने वाला भुखमरी का संकट एक फौरी संकट होगा। इन छोटे उद्योगों की क्रमिक तबाही के बाद दिल्ली के आसपास और दूरवर्ती औद्योगिक क्षेत्रों में खुलने वाले बड़े पूंजीपतियों के जो उद्योग इनका स्थान लेंगे उनमें तकनोलाजी उन्नत होगी तथा बहुत थोड़े-से मजदूरों को ही काम पर रखकर अतिलाभ निचोड़ा जायेगा। दूसरी बात यह कि ऐसा नहीं कि उन थोड़े से मजदूरों को भी बेहतर वेतन तथा काम और जीने की बेहतर परिस्थितियां मुहैया की जायेंगी। बेरोजगार मजदूरों की भारी आरक्षित शक्ति सड़कों पर खड़ी होने के कारण, उन्नत मशीनों पर काम करने वाले मजदूरों को देशी-विदेशी बड़े पूंजीपति भी कम से कम तनख्वाह देकर दिहाड़ी और ठेके पर ही काम करायेंगे। यह स्थिति साहिबाबाद, गाजियाबाद, नोएडा आदि औद्योगिक क्षेत्रों में आज ही दिखाई दे रही है। देशी बड़े पूंजीपतियों और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के उन्नत कारखानों में भी मजदूरों से छोटे कारखानों जितनी ही तनख्वाह पर, लगभग उतनी ही बदतर स्थिति में, और ज्यादातर दिहाड़ी या ठेके पर ही काम लिया जा रहा है। मजदूरों को कभी भी धक्के मारकर बाहर कर देने, रहे-सहे श्रम कानूनों को भी ठेंगे पर रखने, यूनियन कार्रवाइयों को कुचलने व यूनियनें न बनने देने के लिए गुण्डों की मदद लेने जैसे मामलों में अब बड़े मालिक भी छोटे मालिकों जैसा ही खुला जालिमाना व्यवहार कर रहे हैं। यानी छोटे-मंझोले कारखानों की तबाही का जो सिलसिला आज दिल्ली में और देश के अन्य हिस्सों में अलग-अलग ढंग से जारी है, उससे बेकार होने वाली भारी मजदूर आबादी में से एक बहुत छोटे से हिस्से को ही देशी-विदेशी बड़े पूंजीपतियों के नये स्थापित होने वाले उद्योगों में काम मिल पायेगा और उनके भी काम करने और जीने की परिस्थितियों-शर्तों में रत्ती भर सुधार नहीं आयेगा। यह उसी तबाही का एक रूप है जो भूमण्डलीकरण के वर्तमान दौर में जारी एकाधिकारीकरण की प्रक्रिया मेहनतकश आबादी पर थोप रही है।

लघु और मंझोले उद्योगों की भांति-भांति की तिकड़मों से और कानूनों में बदलाव की आड़ लेकर बन्द करने के पीछे बड़ी पूंजी की जो उतावली है, उसे समझना मुश्किल नहीं है। पिछड़ी हुई तकनीक और पुरानी उत्पादन-प्रणाली के बावजूद छोटे उद्योगों का देश के कुल औद्योगिक उत्पादन में चालीस प्रतिशत और निर्यात में आधे से अधिक का योगदान है। इसीलिए इस पूरे हिस्से पर अधिकार जमाने के लिए देशी-विदेशी बड़े पूंजीपति आज बेतरह आतुर हैं। दूसरी ओर उद्योगों में लगी कुल श्रम-शक्ति का लगभग सत्तर फीसदी हिस्सा इन्हीं छोटे और मंझोले उद्योगों में काम करता है। उत्पादन के इन क्षेत्रों में बड़ी पूंजी के काबिज होने के बाद इस श्रम-शक्ति का बड़ा हिस्सा ''फाजिल'' बनाकर सड़कों पर धकेल दिया जायेगा।

यह प्रक्रिया आज पूंजीवादी विकास की स्वाभाविक गति है। आज का पूंजीवाद इससे भिन्न कुछ कर भी नहीं सकता। इस बात को समझकर ही मजदूर वर्ग रोजगार की और काम के अधिकार की अपनी लड़ाई को आगे बढ़ा सकता है और इसे पूंजीवाद के विरुद्ध सीमान्तों पर लड़ी जाने वाली भावी निर्णायक लड़ाई की एक कड़ी बना सकता है।

पूंजीवाद का बढ़ता संकट उसे अपने एकमात्र विकल्प पर निर्मम आचरण के लिए बाध्य कर रहा है और यह स्थिति मजदूरों के सामने भी बस एक ही विकल्प छोड़ रही है—या तो वह भूखे-अधभूखे, बेघर-बेदर गुलामों की स्थिति में जीने के लिए तैयार रहे, या फिर नये सिरे से उठ खड़ा हो, संगठित हो जाये और जुझारू संघर्षों की तैयारी में जुट जाये।

और कितने कड़े कदम बाकी हैं प्रधानमंत्री महोदय!

(पेज 1 से आगे)

से उस तबके को भी एक नया तेज झटका लगने वाला है जो फिलहाल जैसे-तैसे जी ले रहा है। बच्चों को काण्वेण्ट न सही टुटपुंजिया अंग्रेजी स्कूलों में पेट काटकर पढ़ा ले रहा है। जोड़-गांठ कर हारे-गाढ़े, बीमारी-लाचारी में किसी तरह दवा-दारू का इंतजाम कर ले रहा है। अब इस भारी जमात के लिए भी जोड़-जुगाड़ की गुंजाइश और कम हो जायेगी। जिन्दगी पहले से कई गुना और कठिन हो जायेगी।

अपने मालिकों के जमावड़े के बीच प्रधानमंत्री, वित्तमंत्री ने पूरी बेहयाई के साथ अपने इरादों का इजहार किया और उनकी शिकायतों को दूर करने का भरोसा दिलाया। बची-खुची अड़चने दूर कर आर्थिक ''सुधार'' की गाड़ी को सरपट भगाने का वायदा किया। मालिकों ने मांग की कि विनिवेश (यानी निजीकरण) तेज किया जाये, नये श्रम कानून लागू करने में हिचक छोड़ी जाये बिजली और संचार जैसे बुनियादी क्षेत्रों को निजी हाथों में देने के रास्ते की दिक्कतों को जल्दी दूर किया जाये। मालिकों के वफादार सेवकों ने कहा—आमीन! हुजूर ऐसा ही होगा। हम इसके लिए आम सहमति बनायेंगे! आप हमें इसी तरह ''रचनात्मक सहयोग'' देते रहिए।

प्रधानमंत्री जी के कड़े कदम उठाने की हुंकार का यही मतलब है। इसके लिए राजनीतिक आम सहमति बनने में न पहले कोई खास अड़चन थी और न ही आगे होगी। बहसबाजी के राष्ट्रीय अड्डे (संसद) में सबसे बड़ी विपक्षी पार्टी कांग्रेस हमेशा की तरह ''रचनात्मक सहयोग'' देने के लिए तैयार बैठी है। अन्य संसदीय बिरादर भी संसद में अयोध्या-अयोध्या का खेल खेलकर धर्मनिरपेक्षता का पताका फहराते हुए अपना सहयोग हमेशा की तरह देते रहेंगे। रही बात ज्यादा गर्जन-तर्जन करने वाले संसदीय लाल लंगोट वालों की तो वे अधिक से अधिक संसद का बहिष्कार कर या एकाध रैली-प्रदर्शन कर अपनी लाज बचाने की बेशर्म कोशिश से आगे नहीं बढ़ेंगे। इनका पिछला इतिहास यही बताता है।

ऐसे में, देश के मेहनतकश अवाम के सामने अब केवल एक ही रास्ता है कि वह खुदमुख्तार बने। लम्बी, कठिन आर-पार की जंग की तैयारी तेज करे। हमें अपनी विशाल, बिखरी हुई टूटी हुई फौज को नये सिरे से समेटना, सहेजना होगा। कहने की जरूरत नहीं कि यह जिम्मेदारी सबसे पहले मेहनतकश अवाम के जागरूक और आगे बढ़े हुए हिस्से के कंधों पर ही आती है। ●

उदारीकरण–निजीकरण का एक अनिवार्य नतीजा

देशी-विदेशी बड़ी पूंजी का बढ़ता एकाधिकार और तबाह होते लघु उद्योग

● अरविन्द सिंह

यूं तो पूंजीवाद का यह आम नियम है कि बड़ी मछली छोटी मछली को खाती है। साम्राज्यवाद के पूरे दौर में बड़े पूंजीपति घरानों के लगातार बढ़ते एकाधिकार की प्रक्रिया लगातार ही चलती रही है, लेकिन 1991 में नई आर्थिक नीति लागू होने के बाद भारत में इस प्रक्रिया की रफ्तार कई गुना अधिक तेज हो गई है।

भारतीय रिजर्व बैंक के आंकड़ों के मुताबिक, मार्च 1999 तक बीमार लघु औद्योगिक इकाइयों की संख्या तीन लाख छह हजार दो सौ इक्कीस थी। उल्लेखनीय है कि मार्च, 1998 तक बीमार लघु इकाइयों की संख्या दो लाख इक्कीस हजार पांच सौ छत्तीस थी जिनपर कुल 38 अरब 57 करोड़ रुपये बकाया थे। आज बीमार लघु इकाइयों का बकाया बढ़कर 43 अरब 13 करोड़ रुपये हो चुका है। यानी महज एक वर्ष के भीतर 84,685 लघु उद्योग तबाह हो गये। एक अनुमान के मुताबिक वर्ष 1999-2000 के दौरान तबाह होने वाले लघु उद्योगों की संख्या एक लाख से भी ऊपर होगी क्योंकि नई औद्योगिक नीति और आयात-निर्यात नीति के अन्तर्गत सरकार ने कई ऐसे फैसले लिए हैं जो सीधे-सीधे बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और देशी बड़े घरानों के पक्ष में तथा छोटे उद्योगों के खिलाफ हैं। आने वाले दिनों में यह तबाही और तेज गति से तथा और भयानक रूप में जारी रहेगी।

अभी विगत 29 नवम्बर को लघु उद्योग की राज्य मंत्री वसुंधरा राजे ने बहसबाजी के राष्ट्रीय केन्द्र (संसद) में बैठे निखट्टुओं को बताया कि विश्व-व्यापार संगठन के प्रति दायित्व को निभाते हुए सरकार ने वर्ष 2000-2001 की निर्यात-आयात नीति में 58 उत्पादों को लघु उद्योगों के लिए आरक्षित सूची से हटा दिया है। लघु उद्योगों की तबाही की इस चर्चा के समय इस तथ्य को भी याद दिला देना जरूरी है कि सुप्रीम कोर्ट के ताजा फैसले के बाद अकेले दिल्ली के रिहायशी और नॉन-कंफर्मिंग इलाके से ही 97,411 उद्योग हटा दिये जायेंगे, जो प्रायः सभी के सभी लघु उद्योग हैं। जाहिर है कि इनमें से कुछ मालिकों की ही दिलचस्पी किसी और जगह जाकर उद्योग शुरू करने में होगी। जहां तक सम्भव होगा, वे अपनी पूंजी निकालकर किसी दूसरे व्यापार-धंधे, दलाली या सट्टेबाजी में लग जायेंगे और लाखों मजदूर सड़क पर रह जायेंगे।

इस मुद्दे पर हमें मजदूर वर्ग के नजरिए से सोचना होगा न कि छोटे मालिकों के नजरिए से!

लघु उद्योगों की तबाही के इस मुद्दे पर हमें छोटे पूंजीपतियों के हित के नजरिये से नहीं बल्कि मजदूर वर्ग के हित की दृष्टि से विचार करना चाहिए। छोटे कारखानों के मालिक मजदूरों के साथ तो और जालिमाना बर्ताव करते हैं। दिहाड़ी, ठेके और पीसरेट पर ज्यादातर काम होते हैं। 12-14 काम के घण्टे आम बात होती है। यूनियनें प्रायः नहीं हैं या फिर यूनियन के नाम पर मालिकों के ही कुछ एजेण्ट बैठे हैं और यूनियन बनाने की हर कोशिश या आन्दोलन की हर पहल को गुण्डागर्दी के बूते दबा दिया जाता है। जो भी श्रम कानून हैं, उनका भी छोटे कारखानों के लिए कोई मतलब नहीं होता। बड़े कारखानों के मालिक उन्नत मशीनों से ज्यादा उत्पादन के चलते मजदूर की अतिरिक्त श्रम शक्ति को निचोड़कर अधिक मुनाफा कमाते हैं, फिर भी मजदूरों को काम और जिन्दगी की थोड़ी बेहतर स्थितियां हासिल हो जाती हैं और एक साथ काम करने वाली ज्यादा से ज्यादा मजदूर आबादी के लिए संगठनबद्ध होने और संघर्ष करने के लिए स्थितियां भी अधिक अनुकूल होती हैं। इसी नजरिए से सर्वहारा क्रान्ति का विज्ञान बताता है कि बड़े आधुनिक उद्योग मजदूर वर्ग को एकजुट होकर लड़ने के लिए अनुकूल जमीन तैयार करते रहे हैं।

लेकिन बात सिर्फ इतनी ही नहीं है। आज, भूमण्डलीकरण के दौर में, लघु उद्योगों को तबाहकर जो देशी-विदेशी बड़े उद्योग उनकी जगह ले रहे हैं, उनमें तबाह लघु उद्योगों के बेकार मजदूरों, नये बेरोजगारों और गांवों की उजड़ती छोटी किसानी से फाजिल हुई आबादी का एक बहुत ही छोटा हिस्सा लग पाता है। दूसरे, बड़े पूंजीपति भी एक ही प्लाण्ट में असेम्बली लाइन पर मजदूरों की बड़ी आबादी से काम लेने की जगह प्रायः कई छोटे-छोटे प्लाण्टों में बांटकर उत्पादन कर रहे हैं। तीसरे, अत्याधुनिक कारखानों में भी आज 60-70 फीसदी काम दिहाड़ी और ठेका मजदूरों से लिया जा रहा है। बेरोजगार मजदूरों की भारी आबादी की मौजूदगी के कारण देशी-विदेशी पूंजीपतियों को 40-50 रुपये रोजाना मजदूरी पर दस-दस, बारह-बारह घण्टे खटने के लिए दिहाड़ी और ठेका मजदूर उपलब्ध हैं।

वर्तमान पूंजीवादी विश्व व्यवस्था के भीतर उदारीकरण और निजीकरण विकास का आम नियम है। यह होना ही है। सर्वहारा क्रान्ति के लिए भी बड़े उद्योगों में बड़ी से बड़ी तादाद में मजदूरों का एक साथ काम करना अधिक अनुकूल परिस्थिति पैदा कर रहा है। लेकिन अतीत से सबक लेकर बड़े पूंजीपति आज अधिक चालाकी से काम ले रहे हैं। वे कम से कम मजदूरों से ज्यादा से ज्यादा काम ले रहे हैं, ज्यादा काम दिहाड़ी और ठेका मजदूरों से ले रहे हैं। उन्नत तकनोलाजी के चलते वे ज्यादा से ज्यादा मुनाफा निचोड़ रहे हैं। वे मजदूरों को अलग-अलग खाने में और अलग-अलग प्लाण्टों में बांटकर काम ले रहे हैं। इसके चलते, आज बड़े कारखानों में भी मजदूरों का संगठित होना कठिन हो गया है और मजदूरों की बड़ी संख्या बेरोजगार है जो लगातार बढ़ती जा रही है।

इन परिस्थितियों में, आज, बेरोजगारी और अर्द्धबेरोजगारी के शिकार तथा दिहाड़ी और ठेके पर काम करने वाले बहुसंख्यक मजदूरों को संगठित किये बिना उनकी मुक्ति की लड़ाई, और पूरे समाज की मुक्ति की लड़ाई लड़ी ही नहीं जा सकती। बेशक, इन मजदूरों को क्रान्तिकारी राजनीतिक चेतना से लैस करने का रास्ता लम्बा और कठिन होगा, लेकिन यह करना ही होगा।

छोटे और दरमियाने पूंजीवादी मालिकाने के भारी हिस्से को इजारेदार घरानों के हाथों मिटना ही है। यह पूंजीवाद का आम नियम है और मजदूरों के सच्चे प्रतिनिधियों को छोटे पूंजीवादी मालिकों के उजड़ने पर चिन्तित होने या विलाप करने की कोई जरूरत नहीं है। तबाह होते लघु उद्योगों व घरेलू उद्योगों के सवाल पर हमें छोटे मालिकों के नजरिए से नहीं बल्कि मजदूरों और दस्तकारों के नजरिए से सोचना चाहिए।

दस-बीस से लेकर सौ-दो सौ मजदूरों तक से काम लेने वाले और पुराने तौर-तरीकों से उत्पादन करने वाले जो छोटे पूंजीपति तबाह हो रहे हैं, वे भूखों नहीं मरेंगे। इस पूंजीवादी व्यवस्था में कोई-न-कोई काला-सफेद व्यापार-धंधा करके वे कम से कम खुशहाल मध्यम वर्ग की जिन्दगी तो बिता ही लेंगे। पर जो मजदूर उजड़ रहे हैं, वे हाड़तोड़ मेहनत करके भी दो जून की रोटी नहीं जुटा पायेंगे। वे भुखमरी या अर्द्धभुखमरी का शिकार होने के लिए अभिशप्त हैं। उन्हें इस पूंजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध लड़ने के लिए संगठित करना सही सर्वहारा क्रान्तिकारी नेतृत्व का दायित्व और कर्तव्य है।

इन मजदूरों की पूंजीवादी हुकूमत से यह मांग बनती है कि लघु उद्योगों को उजाड़कर उनकी रोजी-रोटी छीनने वाली सरकार की जिम्मेदारी है कि वह उन्हें पर्याप्त हरजाना दे, नया रोजगार देने की जिम्मेदारी ले और नया रोजगार मिलने तक उन्हें भरण-पोषण लायक बेरोजगारी भत्ता दे।

इन मजदूरों को यह चेतना देनी होगी कि जो हुकूमत उन्हें काम करके रोटी खाने का हक नहीं देती, उसे तबाह कर देना उनका जन्मसिद्ध अधिकार और बुनियादी कर्तव्य है।

होण्डा पावर प्रोडक्टस में मजदूरों के निलम्बन का सवाल

जाति और क्षेत्र के संकीर्ण दायरे को तोड़ना होगा! संघर्ष को नया आयाम देना होगा!

बिगुल संवाददाता

रुद्रपुर (ऊधमसिंहनगर) एक दिसम्बर। स्थानीय 'होण्डा पावर प्रोडक्टस लि.' के यूनियन अध्यक्ष राजेन्द्र सिंह रावत और एक अन्य मजदूर राजकुमार कठैत को प्रबन्ध तंत्र द्वारा कारखाने से निष्कासन की कार्रवाई के लगभग ढाई माह बीत जाने के बाद भी कारखाने के भीतर ऊहापोह व अनिश्चय का माहौल व्याप्त है। इस माहौल में अपने बढ़े हुए हौसले के साथ प्रबन्ध तंत्र जहां क्षेत्रवाद को लगातार हवा देने का काम कर रहा है, वहीं यूनियन व श्रमिकों पर वह अपनी जकड़बंदी भी बढ़ाता जा रहा है।

उल्लेखनीय है कि प्रबन्धतंत्र ने एक विभागाध्यक्ष की कथित पिटाई के आरोप में यूनियन अध्यक्ष सहित उपरोक्त दोनों मजदूरों के खिलाफ निलम्बन, एकतरफा जांच कार्य और फिर फटाफट निष्कासन की कार्रवाई कर दी थी। तराई क्षेत्र के सबसे मजबूत जुझारू और दैनिक-नियमित मजदूरों की एकता का प्रतीक बन चुके 'श्रीराम होण्डा श्रमिक संगठन' को तोड़ने के लिए प्रबन्धकों को इससे बेहतर अवसर नहीं मिलता। इस वक्त निहित स्वार्थों की राजनीति करने वालों और विभ्रमग्रस्त साथियों के अन्तरविरोध काफी तीखे चल रहे थे। क्षेत्रीयता की आग कहीं-कहीं सुलग रही थी। प्रबन्धतंत्र ने बड़े ही कूटनीतिक तरीके से इस मौके का फायदा उठाया और मजदूरों के समक्ष एक संकट की स्थिति पैदा कर दी।

कारखाने में प्रबन्धतंत्र और मजदूरों के बीच रस्साकशी विगत एक दशक से जारी है। जब मजदूरों के लम्बे संघर्षों के बाद उनका संगठन अस्तित्व में आया तो उस वक्त प्रबन्धकों ने बड़े ही साजिशाना तरीके से उसका पंजीकरण नहीं होने दिया और रातोरात उसने अपने कुछ विश्वसनीय मजदूरों के साथ दूसरे श्रमिक संगठन का पंजीकरण करवा लिया। उस वक्त मजदूरों ने बड़ी ही सूझबूझ का परिचय देते हुए प्रबन्धतंत्र द्वारा गठित यूनियन की सदस्यता लेकर इस संगठन को ही अपना संगठन बना लिया। तब से लगातार यहां के श्रमिकों ने न केवल अपनी एकता मजबूत की बल्कि अपने जुझारू संघर्षों की बदौलत बहुत से हक व सहूलियतें हासिल कीं। कैजुअल व ठेका श्रमिकों को कई सहूलियतें दिलवायीं, एक हद तक उनके नियमितीकरण को सुनिश्चित करवाया। साथ ही, क्षेत्र के हर मजदूर आन्दोलन का साथ देकर अपनी वर्गीय एकजुटता की मिसाल कायम की।

इधर, इलाके के कारखानेदारों और उनके चैम्बर की आंखों में यह एकता खटकती रही। होण्डा प्रबन्धतंत्र भी इसे तोड़ने के कई असफल प्रयास कर चुका था। पिछले वर्ष त्रिवर्षीय वेतन समझौते के लिए यहां के मजदूरों के लम्बे संघर्ष के दौरान बड़ी ही कुशलता से प्रबन्धकों ने एक और खेल खेला। उस आन्दोलन में यहां के मजदूरों ने आर्थिक तौर पर तो शानदार जीत हासिल की, लेकिन राजनीतिक तौर पर नेतृत्व कमजोर साबित हुआ। अपनी कमजोर वर्गीय दृष्टि और अर्थवादी भटकाव के कारण उस समय का यूनियन नेतृत्व प्रबन्धकों की चाल समझ नहीं सका। लम्बे संघर्षों के दौरान अर्जित शक्ति अब कमजोर पड़ने लगी। आन्दोलन के समापन के साथ ही दैनिक व नियमित श्रमिकों के बीच तीखे अन्तरविरोध उठ खड़े हुए। इधर संगठन का नेतृत्व आपसी अन्तरविरोधों में उलझता चला गया। प्रबन्धतंत्र लगातार मौके की नजाकत को देखता रहा और मौका पड़ते ही अचूक वार कर बैठा।

निलम्बन-निष्कासन की कार्रवाई के बाद से कारखाने में आम मजदूरों के सामने ऊहापोह और असमंजस की स्थिति बनी रही। यूनियन नेतृत्व ने आन्दोलन की एक कारगर योजना बनाकर लागू करने की जगह शुरू में मामले को शार्टकट से हल करने का प्रयास किया। उधर कुछ मजदूरों द्वारा आपसी बैरभाव को निजी मान-प्रतिष्ठा का सवाल बना लेने से संशय-दुविधा की स्थिति और बढ़ती गयी। ठीक ऐसे वक्त में, प्रबन्धतंत्र ने, क्षेत्रवाद को हवा देनी शुरू कर दी। इसके साथ ही, प्रबन्धतंत्र ने कारखाने में हड़ताल या तालाबंदी पर प्रतिबंध का राज्यपाल से अधिकार भी प्राप्त कर लिया। कारखाने में तरह-तरह की अफवाह व चर्चाएं फैलने लगीं।

इसी बीच, यूनियन नेतृत्व के एक धड़े द्वारा कांग्रेसी मजदूर संघ 'इण्टक' से यूनियन की सम्बद्धता ले लेने का भी शिगूफा छूटा। तर्क दिया गया कि संघ की सम्बद्धता से ताकत मिलने और निष्कासित साथियों की बहाली में मदद मिलेगी। निश्चित रूप से, यदि यूनियन ने ऐसा कोई कदम उठाया तो यह उनके लिए आत्मघाती कदम होगा।

पहली बात तो यह है कि इण्टक का गठन ही मजदूर आन्दोलनों को तोड़ने, उनके संघर्ष की धार को कुंद करने के लिए हुआ था। यह संघर्षशील यूनियनों-संघों-महासंघों के समानान्तर मजदूरों के सरकारी महासंघ के रूप में अस्तित्व में आया था। जाहिरा तौर पर इसकी गिरफ्त में आने के बाद आज का जुझारू 'श्रीराम होण्डा श्रमिक संगठन' कल को प्रबन्धकों का जेबी संगठन अथवा एक दलाल संगठन के रूप में तब्दील होने से नहीं बच सकता। मजदूरों के महासंघ होने चाहिए, लेकिन जुझारू संगठनों का जुझारू महासंघ होना चाहिए।

यहां, दूसरी जो महत्वपूर्ण बात गांठ बांधने की है, वह यह कि **कोई भी लड़ाई भीतर की एकताबद्ध ताकत के दम पर लड़ी और जीती जाती है। बाहरी सहयोग-समर्थन तो आन्दोलन को बाहर से ताकत देते हैं। इसलिए, भीतर की एकता को मजबूत करना पहली शर्त है।**

यहीं यह बात भी ध्यान देने की है कि **मजदूर यूनियनों को मजबूत और टिकाऊ बने रहने के लिए मजदूरों की विचारधारा से उन्हें लैस होना बेहद जरूरी है। यूनियनों को अर्थवादी भटकावों से मुक्त रखना होगा और उनमें लगातार क्रान्तिकारी धार पैदा करनी होगी। वेतन-भत्ते की लड़ाई तो यूनियनों की रोजमर्रे की लड़ाई है। असली संघर्ष तो मजदूरों की मुक्ति की लड़ाई से जुड़ा हुआ है। इसके लिए उन्हें क्षुद्र स्वार्थों की झगड़े या निजी बैरभाव की भावना से ऊपर उठना होगा।**

अभी भी होण्डा श्रमिकों ने कुछ विशेष खोया नहीं है। उन्हें **विभ्रम की स्थिति से मुक्त होना और जाति-क्षेत्र के संकीर्ण दायरे से बाहर निकलना होगा। साथ ही, यूनियन के नेतृत्वकारी निकाय को आन्दोलन की सुस्पष्ट रूपरेखा तैयार करनी होगी तथा सूझबूझ भरे कदम उठाने होंगे। आज दो श्रमिकों की बहाली का सवाल, यूनियन के अस्तित्व का सवाल बन गया है। यह समझते हुए संघर्ष को नया आयाम देना होगा।**

●

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वानी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग: कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।
संपादक: डा. दूधनाथ। सम्पादकीय पता: द्वारा ओ.पी. सिन्हा, 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006. सम्पादकीय उपकार्यालय: जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ।